गुरु गोविंदसिंह

काशी नागरीप्रचारिणी सभा

मनोरंजन पुस्तकमाला—३

Guru Govindasingh

गुरु गोविंदसिंह

Beni Prasād

लेखक

वेणीप्रसाद

संपादक

श्यामसुंदरदास बी० ए०

काशी नागरीप्रचारिणी सभा, काशी

पाँचवाँ संस्करण] [मूल्य ३॥) 3/

भूमिका

गुरु गोविंदसिंहजी का जीवनचरित्र इसके पूर्व भी हिंदी में यत्र-तत्र छपा है, पर अब तक वैज्ञानिक और ऐतिहासिक दृष्टि से उनकी जीवनी की छान-बीन नहीं की गई है। किसी महापुरुष की जीवनी के प्रकट करने से तात्पर्य्य यही होता है कि लोग उनके उत्पन्न होने के कारणसमूह को जानें, उनके कार्य्यकलाप को वर्त्तमान समय के संसार की गति से मिलान कर देखें कि उनकी की हुई किस बात पर इस समय हमें चलने की आवश्यकता है, कौन सी कमी हममें है जो उनके आदर्श से पूर्ण हो सकती है, उस ऐतिहासिक समय और आज के समय में क्या अंतर है, और इस समय की कौन सी बड़ी भारी कमी है जिसको पूरा करने के लिये उनके आदर्श की, शिक्षा की आवश्यकता है। इसके लिये आवश्यकता इस बात की है कि केवल घटना-परंपरा का ही वर्णन कर, या सांप्रदायिक प्रशंसा को लक्ष्य में रखकर कोई जीवनी न लिखी जाय; वरन् सत्य घटना के बल से असली जीवनी का विश्लेषण कर वैज्ञानिक रीति से उसकी उपकारिता सिद्ध की जाय, और हमें अपने कर्त्तव्य का, असली लक्ष्य का, सच्चे आदर्श का ज्ञान हो। इन्हीं बातों पर ध्यान रखकर भारतवर्ष की राजनीतिक और धार्म्मिक अवस्था को एक नवीन रूप देने-

वाले, खालसा पंथ के दसवें और अंतिम गुरु गोविंदसिंहजी की यह जीवनी आप लोगों के कर-कमलों में अर्पित की जाती है। यदि उचित रीति से पाठ कर एक जीवन भी कुछ पलटा खा सका तो लेखक का परिश्रम सफल होगा।

विनीत
ग्रंथकार

विषय-सूची

—— —

भूमिका

गुरु गोविंदसिंहजी का जीवनचरित्र इसके पूर्व भी हिंदी में यत्र-तत्र छपा है, पर अब तक वैज्ञानिक और ऐतिहासिक दृष्टि से उनकी जीवनी की छान-बीन नहीं की गई है। किसी महापुरुष की जीवनी के प्रकट करने से तात्पर्य्य यही होता है कि लोग उनके उत्पन्न होने के कारणसमूह को जानें, उनके कार्य्यकलाप को वर्त्तमान समय के संसार की गति से मिलान कर देखें कि उनकी की हुई किस बात पर इस समय हमें चलने की आवश्यकता है, कौन सी कमी हममें है जो उनके आदर्श से पूर्ण हो सकती है, उस ऐतिहासिक समय और आज के समय में क्या अंतर है, और इस समय की कौन सी बड़ी भारी कमी है जिसको पूरा करने के लिये उनके आदर्श की, शिक्षा की आवश्यकता है। इसके लिये आवश्यकता इस बात की है कि केवल घटना-परंपरा का ही वर्णन कर, या सांप्रदायिक प्रशंसा को लक्ष्य में रखकर कोई जीवनी न लिखी जाय; वरन् सत्य घटना के बल से असली जीवनी का विश्लेषण कर वैज्ञानिक रीति से उसकी उपकारिता सिद्ध की जाय, और हमें अपने कर्त्तव्य का, असली लक्ष्य का, सच्चे आदर्श का ज्ञान हो। इन्हीं बातों पर ध्यान रखकर भारतवर्ष की राजनीतिक और धार्म्मिक अवस्था को एक नवीन रूप देने-

वाले, खालसा पंथ के दसवें और अंतिम गुरु गोविंदसिंहजी की यह जीवनी आप लोगों के कर-कमलों में अर्पित की जाती है। यदि उचित रीति से पाठ कर एक जीवन भी कुछ पलटा खा सका तो लेखक का परिश्रम सफल होगा।

विनीत
ग्रंथकार

विषय-सूची

गुरु गोविंदसिंह

पहला अध्याय

प्रस्तावना

संसार की गति कुछ ऐसे दृढ़ और अविचलित नियमों से बँधी हुई चल रही है कि उसमें कहीं भी त्रुटि नहीं दिखाई देती। सहस्रों, लक्षों, नहीं नहीं करोड़ों वर्षों से सब कार्य्य अपने अपने नियम पर ही हो रहे हैं और सदा होते रहेंगे। यथासमय शीत, वर्षा, ग्रीष्म और वसंत ऋतु का प्रादुर्भाव, सूर्य्य का उदय-अस्त, चंद्रदेव की क्षीणता और वृद्धि—सब सदा से एक ही नियम के वशवर्ती हुए चले आ रहे हैं। जब शीत अधिक हुआ तो धीरे से ग्रीष्म के कारण भी आ उपस्थित हुए और कुछ दिनों में धीरे धीरे शीत की प्रबलता घटते घटते शून्यता को प्राप्त हो गई। यद्यपि चलते-चलते 'फगुनाहट की हवा' सनसनाती हुई अपनी छाप जनाती जाती है, पर उसी अटल नियम के वश होकर उसे ग्रीष्म ऋतु को स्थान देना ही पड़ता है। धीरे धीरे वसंत की नई आशा, नवीन पल्लव, नवीन सौरभ के कारण प्राणिमात्र शीत के असह्य क्लेश को बिसारने लगे और वह थोड़ी देर के लिये भी न रहा। वही वसंत ऋतु पहले स्वल्प, फिर धीरे धीरे अधिक, क्रमशः प्रचंडतर ग्रीष्म ऋतु में बदल गई। भगवान् अंशुमाली, जिनकी फीकी ज्योति शीत ऋतु में कुहरे में से कठिनता

से निकल पाती थी, अब अपनी प्रचंड किरणों से संसार को दग्ध करने और जीवों को जलाने लगी। जहाँ लिहाफ़ और रजाई ओढ़े हुए 'सी-सी' किया करते थे, वहीं अब बर्फ़ का पानी और हाथ में पंखी चलाने लगे। कभी गुमान भी नहीं होने लगा कि लिहाफ़ क्योंकर ओढ़ा जाता था। शीत काल की सनसनाती तीखी हवा के बदले लू के झोंकों से जी ऊबने लगा। तृष्णा से तालू शुष्क और प्राण कंठगत होने लगे। नदी-नाले सूखने, पेड़-पल्लव मुरझाने, प्राणी-गण छटपटाने और हाहाकार करने लगे। इतना सताकर 'ग्रीष्म' अपने ही विनाश का कारण बन गया। ज्यों ज्यों गरमी अधिक से अधिकतर होने लगी, त्यों त्यों पानी के भपारे जमा होने और वर्षा के सूचना-सूचक बादल के छितरे टुकड़े गगन में दृष्टिगोचर होने लगे। लोगों के प्राण उद्विग्न हो रहे हैं। ऐसे समय में वे ही छोटे छोटे टुकड़े लगे एकत्र होने। एकत्र होकर इन्होंने पहले छोटा, फिर बड़ा काला निदाघ-कादंबिनी का रूप धारण किया। 'लू' महाराज ने बहुतेरा चाहा कि उन्हें उड़ाकर किनारे करें, बहुतेरा 'साँ-सूँ' किया, हाथ पैर भी मारे; पर "मरज बढ़ता गया, ज्यों ज्यों दवा की" के अनुसार यह बादल चढ़ता-बढ़ता सारे गगन-मंडल में छा गया। प्राणीगण प्रफुल्लित हुए, एक दृष्टि से उनके आने की बाट जोहने लगे। लो देखो, नन्ही नन्ही बूँदें गिरने लगीं, पहले थोड़ी फिर अधिक, फिर और भी अधिक, फिर तो पटापट झटापट, मूसलाधर पानी बरसने लगा। प्राणी शीतल हुए, कुम्हलाए हुए पेड़-पल्लवों ने पानी से धुलकर स्वच्छ श्यामल कांति धारण की और वे आनंद से लहलहाने लगे। दुःखमयी, शूलदायक गरमी

की ज्वाला शांत हुई। लोगों के मन हरे हो गए। पावस-प्रमोद की छटा से सबके मुख-कमलों की छटा बदल गई। नदी-नाले परिपूर्ण हुए। लोग कुछ शांत हुए। नवीन उत्साह, नए बल से कर्म्मक्षेत्र में अग्रसर हुए। इसके बाद फिर शीत, फिर वसंत, पुनः ग्रीष्म—यही चक्र सदा चलता रहा है। केवल 'ऋतु-जगत्' में ही नहीं 'प्राणी-जगत्' की भी यही अवस्था है। पहले सीधी-सादी अवस्था, भोले-भाले लोग, आवश्यकताएँ कम, परिपूर्णता अधिक—इस कारण संतोष, प्रेम, प्रीति और उसके उच्च सोपान भक्ति की उत्पत्ति हुई। धीरे धीरे ज्यों ज्यों मनुष्य-संख्या बढ़ने लगी, आवश्यकताएँ भी बढ़ने लगीं। अपने अपने अभाव की पूर्ति के लिये सब सचेष्ट हो उठे। परस्पर संघर्ष होने और वैमनस्य फैलने लगा। इसी का नाम आजकल की नवीन भाषा में 'उन्नति' करना है। संतोष की जगह तृष्णा, प्रेम की जगह द्वेष हुआ और भक्ति का तो कहीं नामोनिशान भी न रहा। हाँ, जो लोग इस 'संसार-युद्ध' में किसी कारण से असमर्थ हुए, उन्होंने भक्ति के पुत्र ज्ञान और वैराग्य का सहारा लिया। पर "प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति" वाली कहावत चरितार्थ हुई। सच्चे ज्ञान, वैराग्य के बदले 'खाली बैठा क्या करे; इस कोठी का धान उस कोठी में भरे' के अनुसार मनमाने मनगढ़ंत, नाना प्रकार के पेचीले, जीवों को भ्रम में डालनेवाले मार्ग चल निकले। "मारग सोइ जा कहँ जो भावा। पंडित सोइ जो गाल बजावा।" इसका परिणाम यह हुआ कि प्रजा दिन पर दिन अयोग्य, कायर स्वार्थी, आत्माभिमान-शून्य होने लगी। स्वच्छ गंगा की धारा जैसे हिमालय से निकलकर मैदान में आते आते

कलुषित होती जाती है, वैसे ही इनकी आत्मा भी कलुषित और निर्बल होने लगी। सत्यासत्य का विवेक जाता रहा, पक्षपात और दुराग्रह ने सबके हृदय पर दखल जमा लिया। आगे-पीछे का खयाल छोड़कर सब लोग स्वार्थवश हो गए। परिणाम की ओर किसी की दृष्टि न रही। इसका नतीजा जो होना था वही हुआ। परस्पर के विवाद, कलह से देश की संख्या की जड़ में तेल डाला जाने लगा। विदेशियों के लिये द्वार खुल गए। जो जाति अपनी सच्ची स्थिति को सदा विचारती रहती थी और नवीन उद्यम, नए कर्म्मक्षेत्र की खोज में तत्पर रहती थी, उसको यह देश सहज शिकार मिल गया। भला आत्माभिमान-शून्य, अविवेकी, हठी और तुच्छ स्वार्थ के लिये कलह में तत्पर रहनेवाली जाति, इस नवीन बल का सामना क्योंकर कर सकती थी! उसे विवश हो सिर झुकाना पड़ा। राम और युधिष्ठिर की संतान, परशु-राम और दधीचि के वंशधर यवनों की गुलामी करने लगे। शुद्ध हिमालय की गंगा का वर्ण दिल्ली और आगरे में आकर श्याम हो गया। नाम भी बदल गया। आर्य्य से हिंदू हो गए! प्रचंड यवनों ने उसी अटल नियम के वश होकर, क्षणस्थायी अधिकार के मद में आकर, अपनी सच्ची स्थिति पर विचार करना छोड़ दिया और ये अपने अधिकार का दुरुपयोग करने तथा प्रजा को सताने लगे। सारांश यह कि उन्होंने अपने नाश का बीज आप ही बोना आरंभ कर दिया। "अति संघर्ष करे जो कोई, अनल प्रगट चंदन ते होई" के अनुसार गई-बीती हिंदू जाति में फिर भी वही प्राचीन शुद्ध 'गंगा-लहरी' के प्रवाह की सूचना हुई और उसी पंचनद प्रदेश में, जहाँ किसी समय में वैदिक महर्षियों ने गायत्री छंद से 'सविता' की उपासना

की थी, सरस्वती के किनारे शुद्ध अद्वैत की स्तुति के अर्थ उपनिषद् रचे थे, वहीं फिर भी एक जनक ने जन्म ग्रहण किया, जिसने फिर से आर्यों की गई सभ्यता, सच्चे ज्ञान, वैराग्य और आदर्श भक्ति की क्षीण धारा के दर्शन कराकर एक नए युग की सूचना दी। जब कि देश में मुसलमानों की प्रबलता, योग्यता, प्रचंडता की धूम थी, उसी समय एक निरीह क्षत्रिय के घर में 'नानक' नाम के बालक ने जन्म ग्रहण किया। बचपन ही से इन्होंने अपनी भूमिका आरंभ कर दी। गुरु से दो दुगुने चार, तीन दुगुने छः न पढ़कर उसे बतला दिया की सच्ची विद्या क्या क्या है। यज्ञोपवीत करानेवाले पुरोहित को सुना दिया कि "सच्चा धर्म्म सच्चे कर्म्मानुष्ठान में है, तागा पहनने में नहीं।" लोग चकित हुए। बालक की धृष्टता पर किसी को क्रोध भी आया, कोई हँस भी दिए। पर अग्नि तो राख में छिप नहीं सकती। सूर्य्य कुहरे में कब तक छिप सकता है? अंत को लोगों को मानना पड़ा कि इस क्षत्रिय बालक में उसी अटल नियम की शक्ति का पूर्ण समावेश है, जो वसंत के बाद ग्रीष्म और ग्रीष्म के बाद वर्षा की सूचना लाती है। इसके द्वारा वही पुराना संदेश आया है जिसके कारण हम शुद्ध थे, संतोषी थे, भक्तिवान्, ज्ञानवान् और संपन्न थे। यही उस शुद्ध अद्वैत, पक्षपातशून्य, एक मात्र परब्रह्म की उपासना का उपदेश देता है, जिसकी उपासना सप्त-ऋषियों ने वैदिक युग में सरस्वती के किनारे—और हाँ, उसी पंचनद प्रदेश में—की थी। उस बालक की शिक्षा से, उसके उपदेश से, लोग तृप्त हुए, भक्तिमान् हुए। भटकतों को विवेक का मार्ग सूझने लगा। अपनी पुरानी थाती याद आई। सोते हुए आँख मलते उठ

बैठे। दुःखमयी नैराश्य-निशा के बदले उषा का प्रकाश हुआ। पक्षी चहचहाने और बंदीजन गुणगान करने लगे। हिंदू-मुसलमान दोनों ने एक स्वर से इस गृहस्थ फकीर का स्वागत किया। इसने फिर से कलियुग में एक बार राजर्षि जनक का दृश्य दिखा दिया, आर्यों को उनका प्राचीन सनातन पाठ याद करा दिया, जिनके कारण वे महान थे और जिसे बिसार देने के कारण उनकी अधोगति हुई थी। धीरे धीरे लोग इनकी शिक्षा से अपने आपको जानकर इनके पास खिंचे आने लगे। वे नाना प्रकार के भ्रम में डालनेवाले मार्गों को त्यागकर शुद्ध सनातन मार्ग को पहचानने और उसपर अग्रसर होने लगे। शंकर स्वामी के बाद यही पहले पुरुष हुए, जिन्होंने आर्य्यावर्त की सनातन, सीधी-सादी, बलवान् और उद्यमी बनानेवाली शिक्षा का भारत में प्रचार करना आरंभ किया। इनकी सत्य-निष्ठा और परोपकार-वृत्ति ने इन्हें केवल भारत ही में आबद्ध नहीं रखा, वरन् उस समय में, जब कि घर से बाहर पैर रखना जोखिम से खाली न था, इन्हें सुदूर मक्के, फारस, बगदाद तक की यात्रा के लिये विवश किया, जहाँ इनके पक्षपातशून्य, विश्व-प्रेम की वाणी से अभिमानी यवन भी विस्मित और पुलकित हुए और उन्होंने इनका समुचित समादर किया। धीरे धीरे भारतवासियों के हृदय में ज्ञान का प्रदीप प्रज्वलित होने लगा। प्यासी आत्माएँ, जिनके हृदयों में पूर्व-संसार छिपे हुए थे, इनके पास आईं और उन्होंने अपने निज रूप को, अपनी महत्ता को, पहचाना। इन्हीं में से एक को अपना कार्य्य सुपुर्द कर नानक जी परधाम सिधारे। शिष्य-परंपरा से यह उपदेश चलने लगा। गुरु जिसे परीक्षा में उत्तीर्ण समझता, उसी को अपना उत्तराधिकारी बनाता था। कोई

पक्षपात न था। गुरु की गद्दी कायम करने की लालसा न थी; केवल शुद्ध 'खालिस' धर्म्मोपदेश के प्रचार से अभिप्राय था। इसी लिये इस संप्रदाय का नाम 'पंथ खालसा' (शुद्ध-मार्ग) प्रसिद्ध हुआ। तीन पीढ़ी तक कार्य्य बिना विघ्न चलता रहा। जिज्ञासु भक्त लोग इकट्ठे होकर खालसा धर्म्म के व्याख्यान सुनने और उनसे लाभ उठाने लगे। तीसरे गुरु अमरदासजी ने अपनी कन्या की अनन्य भक्ति पर प्रसन्न होकर और उसके गद्दी वरदान में माँगने पर गुरु की गद्दी का अधिकारी उसके स्वामी को बनाया। पर शुद्ध पवित्र शिक्षा का प्रभाव ज्यों का त्यों था। चौथे गुरु रामदासजी ने अपने ज्येष्ठ पुत्र को अयोग्य समझकर, सर्व-कनिष्ठ गुरु अर्जुन जी को उत्तराधिकारी किया। इस पर बड़े पुत्र ने द्वेष माना और अंत को बादशाह के दीवान से मिलकर वह इनकी अकाल-मृत्यु का कारण हुआ। अनुचित अन्याय ने अब तक के शांत धर्म्मप्रवाह को प्रचंड अग्नि का रूप दे दिया। उसी जाति ने, जो सैकड़ों वर्षों से पैरों से रौंदी जाकर अपनी महत्ता से नितांत अनभिज्ञ हो गई थी, आँख खोली तो अपने को एक बलवान् और उग्र रूप में देखा। रूप बदलने लगा। शुद्ध विश्वास ही शुद्ध बल का कारण है। बल संचित होने लगा। छठे गुरु हरगोविंदजी के समय यह शक्ति कसौटी पर कसी भी गई और सच्चा सोना साबित हुई। रूप बदलता गया। अधिकारी पुरुषों को खटका हो गया। वे इस नवीन बल को—हाँ, इसी नवीन धर्म्मबल को – अपने अत्याचारों, अनुचित कार्रवाइयों के समूल उच्छेद का कारण समझने लगे—मन ही मन डरने और प्रत्यक्ष रूप से कभी कभी सम्मान भी करने लगे। नवें गुरु तेगबहादुरजी पर खुल्लमखुल्ला अत्याचार कर

उन्हें अपना उपदेश बंद करने के लिये ललकारा गया। पर ज्ञान-प्रदीप बल चुका था, उसकी स्निग्ध ज्योति बढ़ते बढ़ते प्रचंड ज्वाला के रूप में आ चुकी थी। पर यह ज्वाला अभी शांत थी। यद्यपि इसकी लपटों ने निर्जीव ठंढे भारतवासियों के हाथ-पैर गर्म करने आरंभ कर दिए, पर अभी तक उसने लोगों की अंतरात्मा को उत्साह-रूपी उष्णता नहीं पहुँचाई थी। गुरु तेगबहादुर के बलिदान, धर्मार्थ बलिदान, होने से—सरे बाजार फौलाद के नीचे सर रख देने से—इस ज्वाला ने, इस यज्ञ ने, उपयुक्त हवा पा अपना प्रचंड रूप धारण किया। चारों ओर रोशनी फैल गई। अंधों को भी लाल लपक सी सूझ गई। उनके हृदय भी गुरु के रक्त से अपना रक्त मिलाने के लिये उमड़ आए। जिसके यज्ञ-कुंड की रचना, गुरु नानकदेव जी ने की, जिसमें पहली आहुति गुरु अर्जुनदेवजी की पड़ने से समिधा प्रज्वलित हुई और दूसरी आहुति गुरु तेग-बहादुरजी की पड़कर वह पूर्ण होने के निकट आ पहुँची, उसमें पूर्णाहुति का सौभाग्य दसवें गुरु गोविंदसिंहजी के हिस्से पड़ा। उन्होंने ही इस यज्ञ की समाप्ति कैसे की और इसके ऋद्धि-सिद्धि-रूपी फल-भोग के उपयुक्त आर्य्य संतानों को क्योंकर बनाया, उसमें क्या क्या शिद्दतें उठाईं, नाना विघ्न, विपत्ति निराशा के बीच कैसे अटल भाव से मैदान में वे डटे रहे, यही दिखाने के लिये आज यह जीवनचरित्र लिखा जा रहा है। उस अटल नियम ने, जो संसार में अपना परिवर्तन, ऋतु-परिवर्तन, पृथिवी-परिभ्रमण का कारण है और जो समय समय पर जब जैसे कारण समूह एकत्र हो जाते हैं, तब एक महान् परिवर्तन की सूचना देनेवाले—नहीं वह परि-

वर्तन कर देनेवाले—महापुरुष को जन्म देता है, उसी ने इन गुरु गोविंदसिंहजी को भी भूमंडल पर भेजा।

"यदा यदा हि धर्म्मस्य ग्लानिर्भवति भारत !
अभ्युत्थानमधर्म्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्म्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥"

गीता का उपर्युक्त वचन, इस नियम को स्पष्ट रूप से बतलाता है। पहले न जाने कितनी बार ऐसा हो चुका; और आगे भी जब जब आवश्यकता होगी, अवतार होते ही रहेंगे, इसमें कोई संदेह नहीं।

दूसरा अध्याय

विवाह की बधाई

देखिए, आज यहाँ क्या हो रहा है। यह सजावट किस बात की हो रही है। चारों ओर लोग प्रसन्नमुख, आनंद-वदन, बहुमूल्य वस्त्र धारण किए घूम रहे हैं। गली-कूचे, बाजार सुंदर सुंदर पुष्पों, तोरणों, वंदनवारों से सजाए जा रहे हैं। गुलाब-केवड़े के छिड़काव से दिमाग सुवासित होकर प्रफुल्लित हो रहा है। नर-नारियाँ नाना प्रकार के रंग-बिरंगे वस्त्रा-भूषणों से अलंकृत होकर इधर-उधर घूम रही हैं। एक ओर कोकिलों को लजानेवाले स्वर से कुल-कामिनियाँ मंगलाचरण गा रही हैं, झाड़, फानूस, दीवारगीरों से सुरम्य अट्टालिकाएँ सुशोभित हो रही हैं। पान के बीड़े चबाए, तिर्छी पाग बाँधे, बाँके जवान घोड़ा दौड़ाए आते हैं। इनकी तलवारें पृथिवी को ठोकर से शब्द करती हुई अपनी शक्ति का अनुभव करा रही हैं। मजलिस जमी हुई है। नाच-गाने का समाँ बँधा हुआ है। पान, इत्र, इलायची वितरण हो रहे हैं। आइए, बैठिए, 'जै श्री वाह गुरू की' के शब्द से आनंदपुर आज यथार्थ आनंद का निकेतन बन रहा है। यह सब तैयारियाँ क्यों हैं? आज क्या है? और आनंदपुर ही कहाँ है, जहाँ यह चहल-पहल हो रही है? पाठको, यह आनंदपुर, गुरु तेगबहा-दुरजी का स्थान है। आज उनके प्रिय पुत्र गोविंदसिंह का विवाह है; उसकी ये सब तैयारियाँ हो रही हैं। लाहौर-निवासी हरियश क्षत्रिय की सर्वलक्षण-संपन्ना कन्या से गुरु साहब के प्रिय पुत्र के विवाह की यह धूम-धाम है। नियत

समय पर बालक गोविंदसिंहजी को, जिनकी अवस्था इस समय केवल सात ही वर्ष की थी, सुगंधित द्रव्य आदि से स्नान कराकर, स्वच्छ बहुमूल्य वस्त्राभूषण पहनाए गए, सिर पर कलगी, सिर-पेंच और कमर में तलवार बाँधी गई, यथोपयुक्त पूजोपचार के बाद विवाह की सवारी चढ़ी। बरात की धूम-धाम से, नक्कारे की धमक और नफीरी शहनाई की सुरीली ध्वनि से, सारा प्रांत गूँजने लगा। फूलों की वर्षा होती जाती थी और तख्तों पर अप्सराएँ गान करके दर्शकों का मन मोहे लेती थीं। दूल्हे के सिर पर माता बार-बार अशर्फियाँ वारकर नाई-भाटों को मुक्तहस्त से देती जाती थी; क्योंकि आज उसके पुत्र का—हाँ, एकमात्र पुत्र का—शुभ विवाह है। हाय माता! तुम्हें क्या मालूम ? जिस पुत्र को आज तुम इतने स्नेह से, इतने लाड़ से गोद में बैठाकर मुख चूम रही हो, जिसके कोमल अंगों पर मक्खी बैठती है तो आकर झाड़ देती हो, उस अंग को आगे चलकर भूमि पर सोना पड़ेगा, तलवारों के घाव सहने पड़ेंगे, निराहार वन वन भटकना पड़ेगा। अस्तु; विधना की गति कौन जाने। बड़ी धूम-धाम, बाजे-गाजे, ब्राह्मणों की वेदध्वनि, पूजा-सत्कार के बीच गुरु तेगबहादुरजी के इकलौते पुत्र का विवाह हुआ। इनका जन्म संवत् १७२३ विक्रमी, ज्येष्ठ शुक्ला सप्तमी, शनिवार को अर्द्ध रात्रि के समय पटना नगर में हुआ था। आसाम जाते समय गुरु तेगबहादुरजी अपनी गर्भवती स्त्री माता गूजरीजी को पटने में छोड़ते गए थे। वहीं इनका जन्म हुआ था। किसी किसी के मत से इनका जन्म ज्येष्ठ के बदले पौष शुक्ला त्रयोदशी को हुआ था। जो हो, अपने जन्म का पूर्व वृत्तांत 'विचित्र नाटक' नामक ग्रंथ में इन्होंने यों लिखा

है "पूर्व जन्म में मैं दुष्टदमन[१] नाम का राजा था और धर्म्म-पूर्वक राज्य किया करता था। वृद्धावस्था प्राप्त होने पर अपने पुत्र विजयराय को गद्दी देकर, हेमकूट[२] नामक पर्वत पर, जहाँ अर्जुन ने तपस्या की थी, मंडल ऋषि से उपदेश पा चला गया और पद्मासन बाँध महाकाल के ध्यान में मग्न हुआ। कुछ काल तक तपस्या के बाद महाकाल पुरुष ने मुझे दर्शन देकर अपने 'निज पुत्र' की पदवी दी और कहा कि मेरे अन्य अवतार सब 'स्वयमेव ईश्वर' कहलाए हैं; पर तुम अपने को 'ईश्वर का सेवक' प्रसिद्ध करना। इसी के बाद गुरु तेग-बहादुरजी के यहाँ मेरा जन्म हुआ।"

संसार में जब सब वस्तुएँ बदलनेवाली हैं तब यह जीव भी अपनी अपनी प्रकृति अथवा कर्म्मानुसार भिन्न भिन्न प्रकार के शरीर धारण अवश्य करता है और कर्म्म ही का तारतम्य इसे ऊँचा-नीचा शरीर देता है। किया हुआ कर्म्म विफल

---

१ दुष्टदमन या धृष्टद्युम्न किसी समय में, काठियावाड़ प्रांत में अमर-कोट का राजा था। वह बड़ा प्रजावत्सल और दयालु था। लोगों ने इसका नाम भक्तवत्सल रख छोड़ा था। सिंध तथा काठियावाड़ में पत्थरों पर अब तक उसकी प्रतिमा खुदी हुई मिलती है। लोग हलुआ चढ़ाकर इसका पूजन करते हैं।

२ यह पर्वत उत्तराखंड में हिमालय पहाड़ की शृंखला के अंतर्गत बदरीनाथ से करीब सात-आठ कोस पर है। यहाँ महाकाल का एक मंदिर बना हुआ है। मंदिर में महाकाल भगवान् की प्रतिमा विराज-मान है, जिन्हें कड़ाह प्रसाद (हलुआ) भोग लगता है। इसी पर्वत पर अर्जुन ने तपस्या कर महाकाल से वरदान में अस्त्र पा जयद्रथ को मारा था।

नहीं होता। उसकी छाप केवल अपनी ही अंतरात्मा पर नहीं, वरन् जिस स्थान या काल या आकाश में कर्म किया जाता है, वहाँ भी उसकी छाप रहती है और वही काल पाकर जब फल देने की अवस्था में होती है, तब जीव उसका फल अनुभव करता है। रही पूर्व-जन्म की स्मृति-विस्मृति की बात, सो बहुतों को अपने बचपन की बात स्मरण नहीं रहती। कई लोग दस-बीस वर्ष की बात भी भूल जाते हैं और कई ऐसे प्रतिभावान् हैं कि दो तीन वर्ष की अवस्था तक की बात उन्हें याद रहती है। स्थिर चित्त होकर सोचने से बहुत सी भूली बातें याद आ जाती हैं और इसी 'स्थिर चिंतन' की आदत बढ़ाई जाय तो पुरानी से पुरानी स्वप्न तक की देखी बात याद आ जाती है। 'स्थिर चिंतन' या आत्मनिरोध अथवा योगाभ्यास द्वारा पूर्व जन्म की कथा को जान लेना कोई आश्चर्य की बात नहीं। अब भी कई पुरुष ऐसे विद्यमान हैं जो यहाँ बैठे अदृश्य पदार्थों का चाक्षुष (ज्यों का त्यों) स्वरूप वर्णन कर सकते हैं, जिस भेद का कुछ कुछ आभास 'एक्स-रेज' (X-rays) द्वारा आधुनिक विद्वानों ने पाया है। पूर्वजन्म के संचित कर्म्मों द्वारा इस जन्म में प्रतापी होने का एक साक्षात् दृष्टांत अब भी मौजूद है। कलकत्ते में 'मास्टर मदन' नामक एक नौ वर्ष का बालक संगीत-विद्या का अपूर्व आचार्य्य है। बड़े बड़े अनुभवी वृद्ध संगीताचार्य्यों ने उसकी प्रशंसा की है और उसे सुवर्ण-पदक दिए हैं। कहते हैं कि तीन ही वर्ष की उम्र से यह तान-लय-सुर-समन्वित शुद्ध रागालाप करने लगा था और पाँच वर्ष की उम्र में अच्छे अच्छे गवैयों की गलती पकड़ने लगा था। जिन रागों की साधना में अच्छे अच्छे गवैयों को वर्षों—नहीं सारा जन्म—लग जाता

है वे इसे अनायास सिद्ध हैं। यह शिक्षा इसने कब पाई? अभिमन्यु के माता के उदर में चक्रव्यूह सीख लेने या प्रह्लाद को गर्भ में विष्णु की भक्ति धारण करने को लोग पौराणिक गल्प कह सकते हैं; पर इस जीते जागते दृष्टांत से तो नाहीं नहीं कर सकते। यदि पूर्व जन्म की स्मृति नहीं, तो किस स्मृति से यह बालक 'मास्टर मदन' संगीत का ऐसा अपूर्व आचार्य्य है? अस्तु, गुरु गोविंदसिंहजी की पूर्व-जन्म-संबंधी उक्ति को हम असत्य नहीं कह सकते।

पाँच वर्ष की उम्र तक बालक गोविंदसिंह पटने ही में रहे। बड़े लाड़-चाव से इनका पालन पोषण होता रहा तथा यह भी नित्य नई बाललीला से माता को हर्षित और पुलकित करते थे; पर इनकी बाल-लीला भी विचित्र ही थी। कभी बालकों को इकट्ठा कर ये दो दल बनाते, एक की सर्दारी आप करते और एक का सर्दार दूसरे बालक को बनाते। किसी वृक्ष या किसी वस्तु-विशेष पर अधिकार करने के लिये दोनों दलों में युद्ध ठन जाता। खूब मार-पीट, उठा-पटक, मुक्के-बाजी होती। जो दल विजयी होता अथवा जिस बालक ने अधिक फुर्ती या उत्साह दिखाया होता, उसे बालक गोविंद-सिंह बड़े प्यार से गले में बाँह डालकर अपने पास बैठाते या अपना दुपट्टा उसे उढ़ा देते थे। कभी किसी स्थान को किला नियत कर उस पर एक दल चढ़ाई करता और दूसरा निवा-रण करता। कभी सींकों के धनुष-बाण से तीरंदाजी के निशाने लगाए जाते। किसका तीर आगे जाता है, इसकी होड़ लगती। बालक गोविंदसिंह को तीर चलाने का बेहद शौक था। कभी किसी बालक को घोड़ा बना उसपर चढ़ते और उसको दौड़ाते हुए अपने लक्ष्य पर तीर चलाते। वीर

बालक नित्य नई नई लीलाएँ किया करता था; मानों वीरता और युद्ध-प्रियता ही इनकी जननी और ये उसके औरस पुत्र हों, जो प्रकट होते ही अपनी प्रकृति का आभास देने लगे। इस समय के प्राकृतिक नियम ने ऐसे सामान ही इकट्ठे कर रक्खे थे, वायु-मंडल में ऐसे चित्र और चरित्रों के छाप परिपक्व हो चुके थे, जिनका नमूना बालक गोविंदसिंह प्रगट हुए। कोई आश्चर्य नहीं कि बाल-लीला ही में बड़े बड़े शूर-वीर और योद्धा होनहार महापुरुषों की नकल करने लग गए हों। प्रकृति जिसको जिस काम के उपयुक्त बनाती है, उसके लिये उसे विशेष शिक्षा की आवश्यकता नहीं रहती। सिंह का बच्चा जन्मते ही हाथी के सिर पर जा चढ़ता है, बाज प्रथम पक्षी पर भी वैसी ही तेजी से झपटता है जैसे बाद को। बिल्ली के बच्चों को चूहे पर झपटना क्या कोई सिखाता है? केवल जरा से इशारे की आवश्यकता रहती है। फिर पूर्व-संचित (पूर्व-जन्म संचित) भाव आपसे आप उमड़ आते हैं। प्रत्येक बालक में, जो नीरोग और स्वस्थ माता-पिता की संतान है, किसी न किसी विशेष प्रकार के भाव अवश्य पाए जाते हैं, जिनके पूर्ण विकास होने (खिलने) के लिये पूरा अवसर देना उचित है। पर शोक! कि भारत में ठीक विपरीत हो रहा है। बच्चों को जबरदस्ती स्कूल भेज देना और वहाँ ऐसे विषयों की शिक्षा में उनके मन और दिमाग को परेशान कर डालना जिसमें उनकी रुचि हो या न हो। इसका फल यह होता है कि वही पौधे जिनमें अद्भुत बल निहित था, अकाल में मुरझा जाते हैं और देश की सच्ची पूँजी, हमारे बच्चों को यों 'विद्यालय कहलानेवाली निर्दय चक्की में पीसकर चकनाचूर कर डाला जाता है। तुम्हें अच्छा लगे, या न लगे, याद कर सैकड़ों ही

बार भूल क्यों न जाओ, पर रशिया का बंदर (पोर्ट), पेटरी-पोलोवोस्की या त्रिकोणमिति चतुष्कोण-अष्टकोणमिति अवश्य रटनी ही पड़ेगी, आगे चलकर चाहे जिसका कभी स्वप्न में भी काम न पड़े। भगवान् जाने, इस घोर अत्याचार से इन कोमल पौधों को रौंदनेवाला कौन है, उसे क्या दंड मिलेगा? अस्तु, उस समय 'विद्या-प्रचार' (Education) का भूत लोगों के सिर पर सवार न था और समझदार लोग प्रकृति के दान से लाभ उठाना जानते थे या उठा सकते थे। तेगबहादुरजी ने पाँच वर्ष के बालक गोविंदसिंह को अपने पास आनंदपुर में बुला भेजा। पटने में निवास करते समय वहाँ के राजा फतहचंद्र की रानी इनकी मनोहर बाल-मूर्ति के दर्शन को सदा इच्छा रखती और इनको अपने पास बुला लिया करती थी, और आप भी प्रायः प्रतिदिन उसके यहाँ जाकर दर्शन दिया करते थे। जब बालक गोविंदसिंह आनंद-पुर में पिता के पास चले गए, तो उसी रानी ने इनके स्मरणार्थ एक बहुत भारी पक्का मंदिर बनवाया और उसमें वाटिका लगाई। यह इमारत गुरु की संगत के नाम से विख्यात पटने में अद्यावधि विद्यमान है। गुरु तेगबहादुरजी ने आनंदपुर में बुलवाए बालक गोविंदसिंह की प्रवृत्ति जब युद्धप्रिय होते देखी तो उन्होंने भी इस पौधे को उपयुक्त जल से सींचा अर्थात् वे अच्छे अच्छे उस्तादों द्वारा इन्हें बाना, पटा, तीरंदाजी का हुनर सिखलाने लगे। निशाना लगाना, घोड़े पर चढ़ना, कुश्ती लड़ना, तलवार चलाना, सब हुनर इन्हें बड़ी प्रीति और बड़े चाव से सिखलाए गए। वे भी उपयुक्त शिक्षा पा बहुत शीघ्र ही तैयार होने लगे। काम तो सब बना ही हुआ था, केवल एक निमित्त मात्र की आवश्यकता थी वह निमित्त मिलते

हो अभी बाल अवस्था बीतने भी नहीं पाई थी कि बालक गोविंदसिंह ने इन सब फनों को, जिन्हें सीखते औरों को वर्षों लग जाते हैं, बात की बात में सीख लिया और वे अपने कामों से माता-पिता को पुलकित और सर्वसाधारण को चकित करने लगे। इन दिनों देश-देशांतर से अनेक शिष्य लोग गुरु तेग-बहादुरजी के दर्शनार्थ आया करते थे। उन्हीं में हरियश नामक एक खत्री रईस भी थे, जिनके प्रार्थना करने पर गुरु साहब ने उनकी कन्या से बालक गोविंदसिंह का परिणय स्थिर कर दिया और थोड़े ही दिन बाद इनका विवाह भी आनंदपूर्वक हो गया, जिसकी झाँकी हम पाठकों को अध्याय के आरंभ ही में करवा चुके हैं।

तीसरा अध्याय

धर्मवीर और गुरु गोविंदसिंह की प्रतिज्ञा

आज दिल्ली नगरी में इतनी हलचल क्यों मची हुई है? लोग बड़ी उद्विग्नता से बादशाही दर्बार की ओर क्यों लपके जा रहे हैं? चलिए पाठक, हम भी इनके संग चलकर पता लगावें कि क्या मामला है। थोड़ी दूर आगे बढ़ते ही किले की लाल पत्थर की दीवार दिखाई देने लगी। शाही सिंहद्वार से अन्य लोगों के साथ हमने भी किले में प्रवेश किया। आज बादशाह सलामत औरंगजेब उपनाम आलमगीर शाह दीवानेआम में श्वेत संगमर्मर के चबूतरे पर रक्खे हुए रत्न-मणि-जटित कंचन के मयूरसिंहासन पर विराज रहे हैं। शुभ्र वेश, श्वेत मलमल का अंगा पहने, श्वेत ही पगड़ी जिसपर जगद्विख्यात 'कोहनूर' जगमगा रहा है और श्वेत मखमल-मंडित तलवार बाँधे बड़े ठाठ से बादशाह औरंगजेब तख्त पर विराजमान हैं। औरंगजेब अपनी पोशाक में ज्यादा तड़क-भड़क पसंद नहीं करते थे। वे सादी पोशाक ही पहना करते और अपने को दीन इसलाम का सच्चा सेवक प्रकट करते थे। तख्त के नीचे कतार बाँधे बड़े बड़े अमीर उमरा, राजे महाराजे, हाथ जोड़े सिर झुकाए खड़े हैं। किसी के मुँह से कोई शब्द नहीं निकलता। बादशाही अदब से कोई इशारा नहीं करता या अंग भी नहीं हिलाता है। सब चुपचाप सन्नाटा मारे सिर झुकाए खड़े हैं। ऐसे समय में वह देखिए तख्त के नीचे, ठीक सामने, सिर ऊँचा किए, वह कौन वृद्ध पुरुष खड़ा है? तप्त कांचन गौर वर्ण, श्वेत दाढ़ी लंबी होती हुई नाभि तक चली गई है, विशाल आँखें बड़ी

शांति से बादशाह की ओर निहार रही हैं। हाथ में मोतियों की एक सुमरनी है। चेहरे पर सिवा अटल शांति के उद्वेग या अदब का कोई चिन्ह मात्र नहीं है, जैसे शांत रस अवतार लिए खड़ा हो। पाठको! आपने पहचाना, ये कौन महापुरुष हैं? ये 'खालसा' पंथ के नवें गुरु तेगबहादुरजी बालक गोविंदसिंह के पिता, हैं। ये यहाँ क्यों? बादशाही दर्बार में इनका क्या काम? सुनिए। उन दिनों औरंगजेब ने पाक दीन इसलाम का प्रचार बड़ी प्रबलता से जारी कर रक्खा था। जो सहज में नहीं मानता, उसे तलवार के जोर से मुसलमान बनाया जाता था। सैकड़ों, सहस्रों, नहीं-नहीं लक्षों ब्राह्मण क्षत्रियों के यज्ञोपवीत तोड़ डाले गए, शिखाएँ कटवा दी गईं और पाक दीन इसलाम का बलात प्रचार होने लगा। इन्हीं दिनों काश्मीर के कुछ ब्राह्मणों ने बहुत सताए जाकर गुरु तेगबहादुरजी के यहाँ जा पुकारा कि महाराज, इस घोर कलिकाल में आपके सिवा हमारा रक्षक कौन है! आपही इस प्रांत के सनातन-धर्म्म के रक्षक प्रसिद्ध हैं; गुरु नानकदेवजी की गद्दी के अधिकारी सच्चे गुरु हैं। हम लोगों के परित्राण का उपाय बतलाइए। गुरु साहब, ब्राह्मणों के दीन बचन को सुन कुछ चिंता में पड़ गए। थोड़ी देर विचार कर बोले—"ठीक है! सत्य श्रीअकाल पुरुष की यही इच्छा है! अब तुम लोग यहाँ से सीधे दिल्ली जाओ और बादशाह से जाकर कहो कि निर्बल दीन प्रजा को सताने से क्या लाभ है? इस तरह से एक एक को मुसलमान बनाने में बहुत समय लगेगा; इसलिये यदि आप इस समय धर्म्म-गुरु तेगबहादुर से पाक दीन इसलाम कबूल करवा सकें तो सारा प्रांत एक बार ही मुसलमान हो जायगा और आपको भी ज्यादा

तरद्दुद न होगी, क्योंकि गुरु साहब हम सब लोगों के धर्माध्यक्ष हैं। उनके स्वीकार करते ही हम लोग मुसलमान होने में तनिक भी विलंब न करेंगे। ऐसा जाकर आप लोग बादशाह से कहिए। फिर जो अकाल पुरुष की इच्छा होगी, वही होगा।" ब्राह्मणों ने दिल्ली जा गुरु साहब का संदेशा ज्यों का त्यों बादशाह को कह सुनाया। बादशाह ने दीन इसलाम प्रचार के कार्य्य को रोककर गुरु तेगबहादुर को दर्बार में हाजिर होने का हुक्मनामा लिख भेजा। गुरु साहब तो इसके लिये तैयार ही थे। धर्म्म पर बलि चढ़ने के लिये कमर कस ही चुके थे। जिस कार्य्य के लिये अकाल पुरुष ने संसार में भेजा था उसके पूर्ण होने का समय निकट आया जान उन्होंने प्यारे पुत्र नौ बरस के बालक गोविंदसिंह को बुला भेजा और अपने हाथ से गुरु की गद्दी पर बैठाकर कहा—"बेटा, आज से तुम अकाल पुरुष के सेवक हुए। सनातन-धर्म्म का, श्रीवाह गुरु की पवित्र आज्ञा का पालन करना और उसका प्रचार करना तुम्हारा परम धर्म्म होगा। दुष्ट प्रबल भी हो तो उसे दमन करने में कुछ उठा मत रखना और धर्म्मात्मा निर्बल दीन भी हो तो उससे सदा डरते रहना और उसका सम्मान करना। परब्रह्म तुम्हारी रक्षा करेगा।" इस प्रकार उपदेश देकर सबसे बिदा हो कुछ शिष्यों को संग लेकर वे दिल्ली को रवाना हो गए। मार्ग में कई स्थानों में ठहरते, केवल पाँच शिष्यों के साथ दिल्ली जा पहुँचे और बादशाही दर्बार में हाजिर हुए। वही गुरु साहब आज बादशाह औरंगजेब के सामने खड़े हैं।

बादशाह - क्या तुम्हारा ही नाम तेगबहादुर है और तुम अपने को हिंदुओं का गुरु बतलाते हो?

गुरु साहब—हाँ, इस शरीर को लोग इसी नाम से पुकारते हैं। मैं सनातन-धर्म्म का एक साधारण सेवक हूँ।

बादशाह—तुमने बहुत दिनों तक फकीरी की है?

गुरु साहब—परमात्मा का भजन जो कुछ बन पड़ा, करता रहा हूँ।

बादशाह—कुछ करामात दिखाओ।

गुरु साहब—करामात दिखाना परमेश्वर के बँधे हुए कायदे में खलल डालना है। यह काम दंभियों का है, उसके दासों का नहीं। मैं तो उसका एक तुच्छ दास हूँ।

बादशाह करामात नहीं दिखा सकते तो 'पाक दीन इसलाम' कबूल करो।

गुरु साहब—ऐसा तो नहीं हो सकता।

बादशाह—सिर काट लिया जायगा।

गुरु साहब—परंतु आत्मा पर, जिसपर धर्म्म की छाप बैठती है, तुम्हारी तलवार का कुछ असर नहीं हो सकेगा।

बादशाह—देखो यदि करामत दिखाओ और पाक दीन इसलाम भी कबूल कर लो तो मैं तुम्हारा मुरीद (शिष्य) हो जाऊँगा।

गुरु साहब—मुझे किसी को शिष्य करने की इच्छा नहीं। धर्म्म की सेवा करने की लालसा है। यह माना कि आपके शिष्य होने से मेरा बाहरी ठाट-बाट बढ़ जायगा, दस-पाँच हरकारे आगे-पीछे दौड़ा करेंगे; पर आत्मा की क्या उन्नति होगी? अपने कौल (प्रतिज्ञा) से गिर जाना अकाल पुरुष के सेवकों का काम नहीं है।

बादशाह—दीन इसलाम को कबूल करना क्या गिर जाना है? क्या आप इसे बुरा समझते हैं?

गुरु साहब—मैं किसी मजहब को भी बुरा नहीं समझता।

बादशाह—तो फिर कबूल क्यों नहीं करते ?

गुरु साहब—मेरे कबूल करने का स्थान खाली नहीं है।

बादशाह—वह स्थान कहाँ है और क्या है ?

गुरु साहब—वह मेरा हृदय है। उसपर सत्य सनातन-धर्म्म की छाप बैठ चुकी है।

बादशाह—उस छाप को मिटा डालिए।

गुरु साहब—जैसे अन्न खाया हुआ, हजम होकर, खून बनकर, सारे शरीर में समा जाता है, फिर बाहर निकल नहीं सकता, वैसे ही सनातन-धर्म रूपी अमृत मेरे रोम रोम में समा गया है। वह मिट नहीं सकता।

बादशाह—अच्छा, सबसे अच्छा धर्म्म कौन है ?

गुरु साहब—जो आदमियों को इस संसार-समुद्र से निर्विघ्न पार उतार दे। वह जहाज की तरह है जिसको जो जहाज मिला, उस पर शुरू ही से वह बैठ गया। बीच समुद्र में कोई अपनी किश्ती नहीं छोड़ता।

बादशाह—जहाज भी तो तरह तरह के हैं। कोई बड़ा जो भारी समुद्र में जा सकता है, कोई छोटी सी किश्ती जो तनिक सी लहर से उलट सकती है।

गुरु साहब—यह क्योंकर जाना जाय ?

बादशाह—पैगंबरों की मार्फत खुदा तआला ने फर्मा दिया है। उसी पर चलिए।

गुरु साहब—पैगंबरों के होने के पहले, दीन इस्लाम के जारी होने के पहले क्या खुदा तआला नहीं था ? उसने कुछ हुक्म इंसानों के पार उतरने के लिये नहीं बतलाया था ?

बादशाह—अब मैं ज्याद: बहस नहीं किया चाहता। आप

जानते हैं कि इसकी सजा सिवाय कत्ल के और कुछ नहीं है।

गुरु साहब—मैं कत्ल होने के लिये तैयार हूँ।

बादशाह—क्यों? तुम क्या जीना पसंद नहीं करते?

गुरु साहब—गिरकर जीने की बनिस्बत मरना हजार बार अच्छा है।

बादशाह—बेफायदे क्यों जान गँवाते हो?

गुरु साहब—यह शरीर तो बेफायदे जाना ही है; आज या दो दिन बाद, कोई आगे कोई पीछे।

अस्तु; बादशाह ने उन्हें बंदीगृह में भेज दिया। दो मास तक नाना प्रकार के कष्ट देने और पाँच शिष्यों को बड़ी निर्दयता से मार डालने पर भी जब कुछ फल न हुआ, तब अंत को बादशाह ने इन्हें कत्ल करवा देना ही निश्चय किया। तदनुसार एक दिन प्रातःकाल यह आज्ञा लेकर बादशाही जल्लाद आ पहुँचा। गुरु साहब तो इसके लिये बहुत पहले से तैयार हो चुके थे। श्री जपजी का पाठ करते हुए आसन लगाकर बैठ गए। पाठको! कैसा दृश्य है!! नंगी चमकती तलवार उठी, गुरु साहब ने सिर झुका लिया, वह गिरी और धड़ से सिर अलग हो गया। रक्त का फुहारा छूटने लगा। जरा सी आह नहीं, भय नहीं, खेद नहीं, मानों गुरु साहब की आत्मा पहले ही से अकाल पुरुष की गोद में जा विराजी थी, केवल हवा की धौंकनी पंचभूत का शरीर रह गया था। जब गुरु साहब के सिर को एक शिष्य ने बालक गोविंदसिंह के सामने ला रखा और उन्हें सब समाचार विदित हुए, तो पहले तो उनकी आँखों में आँसू भर आए और वे "हा पिताजी, यह क्या? आपकी यह दशा!!" कहकर रो पड़े।

परंतु दूसरे ही क्षण वीर रक्त उबल पड़ा—"नहीं नहीं, बहुत अच्छी दशा हुई आपकी! धन्य हो प्रभु, 'शीश दिया पर धर्म न दिया।' क्यों न हो! यह आपही से संभव था। हाय! आर्य संतानो, तुममें से और भी ऐसे लोग इस समय होते तो फिर एक वृद्ध धर्माचार्य पर, परमात्मा के सच्चे भक्त परोपकारी महात्मा पर यह अनुचित अत्याचार न होता। पुण्यमयी भारतभूमि, क्या पिताजी के रक्त से सींची जाकर तू अब भी वीर पुरुषों को उत्पन्न करने योग्य उर्व्वरा नहीं हुई? हुई है? हुई है, और मैं अब अपने रक्त से जो कुछ भी कमी है, उसे पूरा करूँगा। पिताजी के रक्त में अपना रक्त मिलाकर इस यज्ञ की पूर्ति करूँगा। भारतवासी, अरबवासी, पातालवासी और स्वर्गवासी देखेंगे, हाँ—देखेंगे, इस यज्ञ की ज्वाला को—इस पवित्र अग्नि को जो समयानंतर में सारी अपवित्रता, सारे निरुद्यम, सारी कायरता, सारी धर्महीनता को भस्म कर देगी और सच्चा असली सोना 'खालिस' धर्म्म, वीर-धर्म्म, वीर पूजा का प्रचार होगा। अकाल पुरुष सहायक हों।"

———

चौथा अध्याय

धर्म्मयुद्ध की तैयारी

पिता का यथोपयुक्त संस्कार, श्राद्ध इत्यादि करने के बाद बालक गोविंदसिंह गहरी चिंता में निमग्न हुए। क्या किया जाय, इस अन्याय-अत्याचार का क्या कुछ प्रतीकार न होगा? क्योंकर होगा? आज दिन देश में कौन ऐसा बली प्रतापी है जो बादशाह औरंगजेब का सामना कर सके? कोई नहीं? फिर क्या किया जाय? हाय! पुण्यभूमि आर्यावर्त! क्या इस समय भीष्म या दधीचि की सच्ची संतान एक भी नहीं है? है क्यों नहीं? हम लोग कोई दूसरे तो नहीं। उन्हीं का रक्त तो हमारी नसों में भी बहता है। फिर क्यों? क्या हुआ कि हम ऐसे तेजहीन हो गए? तेजहीन होते तो जोते क्योंकर? तेज तो है हो पर जैसे सूर्य कोहरे में छिप जाता है, वैसे ही हमारा तेज इस समय आलस्य और जड़ता के कोहरे में छिपा हुआ है। नहीं तो क्या मजाल थी कि इतने मनुष्यों के रहते हुए; मुसलमान आकर हमारे घर के मालिक बन बैठें और हम पर मनमाना अत्याचार करें। ठीक है। इस आवरण को—जड़ता और आलस्य के आवरण को—दूर करना चाहिए। दूर क्योंकर होगा? यवनों में मिथ्या विश्वास हमसे बहुत कम है। हमें भी मिथ्या विश्वास छोड़ना होगा। गुरु नानकदेव जी इसका बीज बो गए हैं। अब इसका खूब जोर-शोर से प्रचार करना चाहिए, जिसमें मिथ्या विश्वास की जड़ समूल उच्छिन्न हो जाय। झूठा विश्वास ही लोगों को कायर

और निरुद्यमी बनाकर जड़वत् कर देता है और वे सब कुछ रहते भी हाथ पैर काटकर जगन्नाथ बन बैठते हैं। और जो जाति एक मात्र परब्रह्म सत्य श्रीअकाल पुरुष की उपासना के सिवाय व्यर्थ पचड़ों में समय नहीं गँवाती उसका बल मिथ्या-विश्वासियों से अवश्य प्रबलतर होता है। अब हिंदू जाति को जगाना चाहिए। व्यर्थ के आडंबरों से छुड़ाकर उन्हें सच्चे धर्ममार्ग पर लाना चाहिए। तभी उनकी जड़ता दूर होगी। इतनी आर्य संतान के सामने मुट्ठी भर इसलामी क्या कर सकेंगे? यदि सच्ची जागृति हो गई तो अवश्य औरंगजेब का बल-क्षय होगा और इस अन्याय का, अत्याचार का, प्रतीकार होगा। अब से, खालसा धर्म्म का प्रचार खूब जोर-शोर से हो। वीर-धर्म्म का उपदेश हो। साथ ही युद्ध के सामान भी इकट्ठे होने चाहिएँ। इसमें तो द्रव्य की आवश्यकता होगी। खैर कोई हर्ज नहीं। यदि प्रत्येक शिष्य भी एक एक बंदूक या दस दस गोलियाँ या एक एक तलवार लावेगा और प्रतिदिन जो सैकड़ों दर्शन करने आते हैं, प्रत्येक नहीं यदि सौ में दस भी लावें तो वर्ष के अंत तक तीन चार हजार अस्त्र बिना द्रव्य के एकत्र हो जायँगे। दो तीन वर्ष बाद मैं कर्म्मक्षेत्र में उतर सकूँगा और दस-पंद्रह हजार शिक्षित खालसा सेना मेरे अधीन होगी। अकाल पुरुष सहायक हों--अस्तु, गोविंदसिंह ने सोच समझकर यह आज्ञा-पत्र निकाला कि अब से जो दर्शनार्थी शिष्य द्रव्य या अशरफी के बदले तलवार, पेशकब्ज या गोला बारूद गुरु की भेंट लावेगा या गुरु का सिपाही बनना स्वीकार करेगा, उसपर गुरु साहब की विशेष कृपा होगी; घोड़े खच्चर या हाथी की भेंट भी सादर स्वीकृत होगी। भेंट में द्रव्य लानेवाले की

अपेक्षा इन सब चीज़ों का महत्त्व ज्यादा समझा जायगा। ऐसा आज्ञापत्र निकाला और उसकी बहुत सी नकलें करवाकर देश-देशांतर में शिष्यों को भेज दी गई। अब से गुरु गोविंदसिंहजी नित्य जितने उपस्थित शिष्य थे, सब के साथ घोड़े पर चढ़कर कवायद करने, युद्धों के दाँव-घात सीखने-सिखाने लगे। जो शिष्य दर्शन करने आते, बिना अस्त्र के खाली कोई न आता था। तलवार, नेजा, बरछी, कुटार, चक्र, करद, बंदूक, गोली जो जिससे बनता, गुरु की सेवा में अवश्य भेंट लाता। गुरु साहब उन अस्त्रों को स्वयं हाथ में उठाकर देखते, उनकी तारीफ करते और तत्काल अपने सिलहखाने में उन्हें भिजवा देते थे। जो कोई उम्दा घोड़ा या खच्चर लाता, उसपर उसी समय सवार होकर दौड़ाते और देखते, जाँच करते थे। इन चीजों के लाने वाले शिष्यों पर बड़े प्रसन्न होकर वे आशीर्वाद देते या परम उत्साहपूर्ण वचनों में उन्हें 'वीर-मंत्र' का उपदेश देते। रामचंद्र, भरत, भीम, अर्जुन और भीष्म की कथा सुनाते। दधीचि, शिव और हरिश्चंद्र के दृष्टांत से उनके चित्त को अपनी तरफ आकर्षित कर शिष्यों को ऐसा मोहित कर लेते थे कि वे गुरु साहब पर तन, मन न्योछावर करने को तैयार हो जाते थे और कितने ही गुरु के सिपाही बनना स्वीकार कर वहीं रह जाते थे।

जिस समय किशोर वय के गुरु साहब गद्दी पर बैठे हुए वीर-मंत्र का उपदेश करते तो उत्साह से उनके नेत्र लाल हो जाते थे, भुजा फड़कने लगती थी, या जब कभी किसी शिष्य की भेंट की हुई तलवार को म्यान से निकालकर वे देखते या उसकी प्रशंसा करते, तो उनके श्रीमुख पर एक अद्भुत छटा छा जाती थी। उनके उत्साहपूर्ण गंभीर उपदेश, किशोर वय,

चमकती हुई तेज आँखें और वीर वेष का शिष्य-वर्ग पर बड़ा प्रभाव पड़ता था। कायर से कायर भी उनके सामने आकर एक बार फड़क उठता था। वे अस्त्र-शस्त्र या घोड़ा वगैरः भेंट में लानेवाले का बड़ा सत्कार करते, बड़ी खातिर से उसे अपने पास बैठाते और अपने वचनों से उसे मोह लेते थे। तात्पर्य्य यह कि गुरु साहब को अपने व्रत-साधन का मन से लग गई थी। उसके लिये उन्होंने सर्वस्व अर्पण करना निश्चय कर लिया था। अठारह वर्ष के ऊपर और पचास वर्ष के भीतर के जितने शिष्य इनके दर्शन को आते, वे सबको ऐसे प्रेम से मिलते कि वे उन्हीं के पास रह जाते। उन्हें भाई-बंधु, कुटुंब परिवार सब भूल जाता। वे युवा शिष्यों से बड़ा प्रेम करते और उन्हें युद्ध-विद्या सिखाने में दत्तचित्त रहते थे। यदि उनमें से कभी कोई घर जाना चाहता तो बड़ी प्रसन्नता से घर जाने की वे आज्ञा भी देते और "मुझे भूल न जाना; शीघ्र ही मुख-कमल दिखलाना" ऐसे मधुर वचनों से उसे फिर शीघ्र ही आने को कह देते थे। इन बातों का परिणाम यह हुआ कि दो ही तीन वर्षों में पचासों हजार, तरह-तरह के, अस्त्र-शस्त्र गुरु साहब के सिलहखाने में जमा हो गए। हजारों घोड़े तबेलों में हिनहिनाने लगे। कोई शिष्यों की टोली दो, कोई चार, कोई छः मास तक गुरु साहब की सेवा में रहती और कोई शिष्य तो हर घड़ी बने रहते थे। वे ऐसे मुग्ध थे कि एक घड़ी साथ नहीं छोड़ते थे। गुरु के लिये सब कुछ न्योछावर करने को हथेली पर जान लिए तैयार थे। प्रति दिन सायं प्रातः धर्म्मोपदेश होता था जिसमें योद्धा बनने और परस्पर प्रीति और भ्रातृ-भाव रखने का उपदेश विशेष जोर देकर बड़े ऊँचे स्वर से शिष्यों को सुनाया जाता था। दूसरे, तीसरे, शिष्यों को संग लेकर

वे शिकार करने जाते। चीते, भालू, शेर बड़े-बड़े भयावने जंतुओं का शिकार खुद करते और शिष्यों से करवाते थे, जिसमें वे लोग सर्वदा निडर हो जायँ, कायरता जाती रहे, और वे अपने रूप को, तेज को, पहचानें। कभी उनके साथ होड़ लगाकर तीरंदाजी करते या द्वंद्वयुद्ध, नकली लड़ाई, करवाते थे। धीरे-धीरे किशोर वय से इन्होंने युवावस्था में पदार्पण किया। शरीर बली, दृढ़, लंबी भुजाएँ, चौड़ी छाती और उन्नत गौरवर्ण ललाट पर 'प्रतापी' शब्द अंकित था। इनके चलाए तीर तीन तीन मील तक जाते थे। इनकी करतूत, उत्साह और दृढ़ता तथा शुद्ध और निर्मल आचरण, मधुर वचन और प्रीति-संभाषण को देखकर बड़े बड़े बूढ़े पुराने लोग भी चकित होते थे और विस्मय तथा प्रीति की दृष्टि से इनकी ओर निहा-रते नहीं अघाते थे। युवकों का तो इन्होंने मन हर लिया था। उनके लिये सच्चे 'मनोहर' बन गए थे। वे खाना-पीना घर-बार, कुटुंब-स्त्री-पुत्र सबकी सुधि बिसराकर गोविंदसिंह के मुख की ओर, उनके श्रीमुख की निकली हुई आज्ञा की ओर निहारते थे। यदि गुरु साहब कहें कि अग्नि में कूद पड़ो तो सैकड़ों शिष्य उसी दम तैयार थे, ऐसी प्रीति उन लोगों की गुरु साहब के प्रति हो गई थी। क्यों न हो? जिसपर पहले श्रद्धा हो, भक्ति हो, वह यदि प्रीतिपूर्वक मधुर वचनों से अधीन जनों का—शिष्यों का सत्कार करने लग जाय तो शिष्यगण क्यों न गुरुजी पर प्राण न्यौछावर करने को तैयार हो जायँ। मधुर भाषण भी तो वशीकरण मंत्र है। अस्तु, गुरु साहब ने जब देखा कि अब कार्य आरंभ करने का समय आ गया है, परीक्षा आरंभ होनेवाली है तब वे बादशाही ठाट से रहने लगे और उन्होंने हिंदू प्रजा मात्र

के धर्मरक्षक की पदवी धारण की। उस हिंदू जाति ने जो अब तक पतित, पददलित पड़ी हुई थी, सिर उठाया, आँखें खोलीं और गुरु साहब के दर्शन कर वह पुलकित और आनंदित हुई।

जो लोग अब तक अपने को अयोग्य समझते थे उन्हें आत्मावलंबन स्वाधिकार का ज्ञान होने लगा। निरुद्यमी भारत-संतान जो यह समझे बैठी थी कि "हमारे किए कुछ नहीं हो सकता" उसकी निद्रा दूर भागी और उषःकाल के नवीन उत्साह से उसका हृदय रंजित हुआ। बाल-सूर्य गुरु गोविंद सिंह के संमुख प्रभात-चंद्र औरंगजेब की ज्योति लोगों को फीकी जँचने लगी। तात्पर्य यह कि भारतवर्ष में एक सर्व-साधारण जागृति की सूचना हो चली और लोग अपनी खोई हुई थाती को खोजने लगे। अब तक जो बेखबर पड़े थे, उन्हें होश आया, वे सँभलकर उठ बैठे और गुरु साहब की ओजस्विनी वक्तृता का कुछ कुछ मर्म उनकी समझ में आने लगा। सबके मन में यह बात आने लगी कि वास्तव में हमारी जड़ता ने, हमारे आलस्य ने, हमें बड़ी हानि पहुँचाई। हमें किसी लायक नहीं रखा। गुरु साहब का उत्साहपूर्ण उपदेश नित्य सायं-प्रातः जारी रहता था, जिसमें किसी का उत्साह कम न होने पावे। दिन पर दिन श्रोताओं और शिष्यों की संख्या बढ़ने लगी।

यों तो नित्य तरह तरह के अस्त्र-शस्त्र और घोड़े इत्यादि गुरु साहब की भेंट आते थे पर उसमें निम्नलिखित महाशयों की लाई हुई चीजें उल्लेख योग्य हैं।

प्रथम तो इन्हीं दिनों संवत् १७३३ विक्रमी अगहन सुदी ३ को आसाम के राजा का लड़का रत्नराय, जो गुरु तेगबहादुर के

आशीर्वाद से हुआ था, गुरु साहब के दर्शनों को आया और उसने बहुत सा धन इनको भेंट किया। उसने और भी कई अद्भुत वस्तुएँ इनकी भेंट की जिनका ब्योरा इस प्रकार है—

(१) एक पँचकला हथियार, जिसमें बंदूक, बरछी, गुर्ज, पेश-कब्ज और कुल्हाड़ा ये पाँच चीजें गुप्ती के तौर पर थीं, और पेंच दबाते ही प्रकट हो जाती तथा लुप्त हो जाती थीं।

(२) एक चंदन चौकी, जिसके चारों पावों में यह गुण था कि जब गुरु साहब उस पर बैठकर स्नान करते तो उनमें से स्वयं ही चार बड़ी खूबसूरत पुतलियाँ निकल आतीं और चौकी पर से उतरते ही लोप हो जाती थीं।

(३) बहुत उम्दा पाँच अरबी घोड़े जो रेगिस्तान में भी बड़ी तेजी से दौड़ सकते और युद्ध में भी थकते न थे।

(४) एक श्वेत हाथी, जिसकी शिक्षा अपूर्व थी। यह रात्रि को सूँड़ में मसाल पकड़कर रोशनी दिखाता, सूँड़ से चमर करता, तलवार चलाता, जूता झाड़ देता, तीर उठा लाता तथा झारी उठाकर पैर धुलाता था।

गुरु साहब उसकी भेंट से बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने बड़ी खातिर से उसे अपने पास रक्खा। जब कभी वे शिकार में या कहीं बाहर जाते तो आसामवाले राजा रत्नराय को अपने साथ ले जाते और निराले में उसे सत्य श्री आकल पुरुष की उपासना और वीर मंत्र का उपदेश देते थे। बाल ब्रह्म-चारी भीष्म, कृष्ण-सखा अर्जुन, महाराणा प्रताप इत्यादि के चरित्र सुनाकर उन्होंने राजा रत्नराय को वीर व्रत का व्रती बनाया। वह मुग्ध हो बहुत काल तक गुरु साहब के पास ठहरा रहा। बाद को राज-कार्य्य में हानि न हो, इस विचार से गुरु साहब ने बहुत ऊँच-नीच उपदेश देकर उसे अपने घर

आसाम लौट जाने की आज्ञा दी।

दूसरा संवत् १७३८ विक्रमी को वैशाखी के मेले पर काबुल-निवासी पूनीचंद्र या दूनीचन्द्र नाम का एक खत्री शिष्य गुरु साहब के दर्शनों को आया। उसने बहुत उम्दा जरदोजी काम तथा काश्मीरी पश्मीने का एक बड़ा तंबू-मय कनात के गुरु की भेंट किया, साथ में बहुत सा धन-रत्न भी भेंट दिया। उसे भी गुरु ने धर्म्मोपदेश के साथ सच्चे क्षत्रिय बनने का उत्साहपूर्ण उपदेश दिया।

तीसरा एक शिकारपुरी खत्री भक्त आया जिसका नाम सेठ गगनमल्ल था। यह बड़ा रईस और धनवान् था। इसने बड़े प्रेम-भाव से दस हजार अशरफी गुरु साहब को भेंट की। उसके साथ और भी बहुत से लोग दर्शन करने आए थे जिन्होंने गुरु साहब के प्रभाव से मुग्ध होकर सहस्रों रुपए। रत्न, माणिक और हाथी-घोड़े गुरु साहब को अर्पण किए, ऐसा कोई दिन नहीं जाता था कि दस-पाँच सहस्र रुपया या कुछ अस्त्र-शस्त्र या घोड़े भेंट में न आते हों। गुरु साहब के उपदेश और इनके वीर मंत्र की ध्वनि नगर और ग्राम ग्राम में पहुँचने लगी और नित्य प्रति भक्त लोगों की भीड़ भेंट ले लेकर आने लगी। घर से चलते हुए जब कोई सुनता कि गुरु साहब शस्त्र की भेंट अधिक पसंद करते हैं तो वह, चाहे जिस तरह से हो, कोई न कोई उम्दा नवीन अस्त्र भेंट के लिये अवश्य संग लाता। इसका परिणाम यह हुआ कि इनका अस्त्र-भंडार नाना प्रकार के चमकीले अस्त्रों से चमचमाने लगा। खजाने में रत्नों की भी कमी न थी, सहस्रों युवा वीर शिष्य सर्वदा सेवा में तैयार थे। तात्पर्य यह कि इनका वैभव अच्छे अच्छे बादशाही सूबों के वैभव को भी मात करने लगा।

सर्वसाधारण की तो बात ही क्या, आस-पास और दूर दूर के बड़े बड़े राजे महाराजे भी गुरु साहब की कीर्ति सुनकर इनके दर्शनों को आते और लाखों रुपए नकद और अच्छे अच्छे अस्त्र तथा घोड़े भेंट करते थे।

संवत् १७४१ विक्रमी में नाहन के राजा मेदिनीप्रकाश इनके दर्शनों को आए। उन्होंने बहुत कुछ धन-रत्न भेंट देकर गुरु साहब को अपनी राजधानी में पधारने का बड़ा आग्रह किया। कारण यह था कि इन्हें शिकार का बड़ा शौक था और हमारे युवा गुरु साहब भी शिकार के बड़े प्रेमी थे। इनका निशाना ऐसा सच्चा होता था कि तीन तीन मील तक की चीजों को तीर चलाकर ये वेध देते थे। भूमि पर खड़े हुए बड़े से बड़े शेर का शिकार कर लेना इनके लिये एक साधारण बात थी। इसलिये राजा मेदिनीप्रकाश इन्हें अपने संग लिवा ले गए और नित्य शिकार में इनकी नई नई करतूतों को देखकर चकित और पुलकित होने लगे। परस्पर प्रीति यहाँ तक बढ़ी कि उन्हीं के इलाके में पाँवटा नामक एक ग्राम बसाकर गृहस्थी समेत गुरु साहब रहने लगे। वहीं पर आपने एक मजबूत किला भी बनवाया, जिसके कुछ चिह्न अब तक मौजूद हैं।

इनकी कीर्त्ति और ज्ञान-चर्चा की बात सुनकर बुद्धूशाह नामक एक फकीर इन्हीं दिनों इनसे मिलने आए। यह कसबा सढौर के निवासी थे तथा गुरु साहब से मिलने की इच्छा बहुत दिनों से रखते थे। गुरु साहब ने उनकी बड़ी खातिर की। बहुत देर तक धर्म और ज्ञान-चर्चा होती रही और वह आत्मविद्या, वेदांत शास्त्र के गूढ़ तत्त्वों में युवा गुरु साहब की इतनी पहुँच देखकर बड़े चकित और पुलकित हुए, पर इनके लिये यह साधारण बात थी। गुरु नानक-

देव जी के समय से गुरु की गद्दी का प्रत्येक अधिकारी अध्यात्म-विद्या का पूर्ण पंडित होता था। बचपन ही से उसे यह विद्या सिखाई जाती थी। गुरु हरिकृष्णजी ने पाँच ही वर्ष की उम्र में दिल्ली जाकर राजा जयसिंह को इसका परिचय दिया था। सो इनके लिये यह कोई आश्चर्य की बात न थी। फकीर बुद्धूशाह का इनसे मिलने का एक उद्देश्य और भी था। बात यह थी कि बादशाह के बागी पाँच पठान सर्दार बुद्धूशाह के मित्र थे और उन्हें कहीं सिर रखने का ठिकाना न था। गुरु साहब को उठता हुआ वीर पुरुष और बादशाह का वैरी जान, शाह साहब ने इन पठानों को गुरु साहब की सेवा में रखना चाहा। गुरु साहब ने, जो इस समय युद्ध की तैयारी के सामान जुटा रहे थे, यह बात सादर स्वीकार की और पाँच सौ सवारों के सहित उन सर्दारों को अपने यहाँ नौकर रख लिया। ये लोग बहुत दिनों से लूट-मार करते हुए इधर-उधर घूम रहे थे। पर बादशाही डर से कोई भी राजा-महाराजा इन्हें आश्रय नहीं देता था। पर हमारे गुरु साहब ने इसकी कुछ परवाह न की और बेखटके इन बहादुर सर्दारों को अपने पास रख लिया। इनको ऐसे लोगों की जरूरत भी थी, जो बहादुर हों और बादशाह से वैर रखते हों।

आसाम के राजा इन्हीं दिनों भादों के महीने में दूसरी बेर इनके दर्शनों को आए। नाव पर सवार होकर यमुना के बीच इन्होंने उनसे मुलाकात की और कहा कि "देखो भाई! मैंने जिस कार्य्य को—धर्म्मोद्धार और देश-रक्षा के कार्य को—उठाया है वह तुम्हें विदित ही है। इसमें आजकल या दो दिन बाद मुझे प्रबल शत्रु का सामना करना पड़ेगा। अकेले कोई कार्य्य नहीं हो सकता। मैं समझता हूँ कि समय पड़ने

पर तुम अवश्य इस धर्म्म-कार्य्य में सहायक होगे।" आसाम के राजा रत्नराय ने उत्तर दिया—"मेरा तुच्छ शरीर, राज-पाट सब कुछ गुरु की, अकाल पुरुष की, सेवा के लिये अर्पण है। जब आज्ञा होगी मैं आ पहुँचूँगा।" अस्तु, बड़ी प्रीति से मेल-मिलाप कर वह विदा हुआ। इसके बाद नाहनवाले राजा मेदिनीप्रकाश के यहाँ रहते हुए श्रीनगर के राजा फतह-चंद्र को, जो गुरु साहब के चित्त से प्रेमी थे, गुरु साहब ने बुलवा भेजा। नाहन के राजा से इनका कुछ मन मुटाव था, किंतु गुरु साहब के बुलाने पर वह सादर चले आए। गुरु साहब ने दोनों राजाओं को एकांत में ले जाकर कहा—देखो भाइयो, आपस के झगड़े ने देश की क्या अवस्था कर दी है। आपस की फूट से बढ़कर दुर्दशा करानेवाली दूसरी और कोई चीज नही हैं। इसने कौरव-पांडव के कुल का नाश कर दिया, सोने की लंका खाक में मिला दी, तो हम-आप किस गिनती में हैं। इन दिनों हम अपने थोड़े से स्वार्थ को न त्याग सकने के कारण भाई भाई के खून के प्यासे हो जाते हैं। प्रियवरो, जरा सोचो। सर्व-साधारण के, देश के, मंगल के अर्थ आपस के मनो-मालिन्य को दूरकर दूध पानी के से एक हो जाओ।" इस प्रकार उन्होंने उन्हें बहुत कुछ समझाया बुझाया जिसका दोनों राजाओं पर बड़ा प्रभाव पड़ा और उन्होंने मेल कर लिया। जहाँ कहीं जरा भी कोई कारण देश के कल्याण, जाति के उत्थान का विरोधी देख पड़ता, गुरु साहब की निगाह उससे चूकती न थी। वे तत्काल उसका उपाय करते जिससे बुराई का अंकुर जड़ न पकड़ने पाता। यों तो जो मिलने जाता उसे उपदेश करते ही, पर इससे इनकी आत्मा तृप्त नहीं होती थी। इनका उत्साह इस समय बहुत बढ़ा चढ़ा था। इस

लिये कार्तिक मास में कपालमोचन के मेले में जाकर वहाँ भी इकट्ठे हुए जन-समुदाय को इन्होंने नियमपूर्वक उपदेश देना प्रारंभ किया। उपदेशों का सारांश यह था—"संसार में पैदा होकर जिसने अपने को न पहचाना, जिसने सच्चा मनुष्य बनने की चेष्टा न की, उसकी माता बाँझ रहती तो अच्छा था। यदि आँख हुई और फूटी हुई, तो वह केवल पीड़ा का कारण होती है। वैसे ही अयोग्य प्राणी सृष्टि के, देश के और धर्म के अकल्याण का कारण होते हैं। आँखें खोलो अपने को पहचानो। तुम उन महापुरुषों की संतान हो जिन्होंने एक परब्रह्म की उपासना में जन्म जन्म बिता दिए थे, जिन्होंने परोपकार के लिये हड्डियाँ तक दे दी थीं और तुम्हारी यह दशा कि व्यर्थ मिथ्या विश्वासों के पीछे गली गली मारे मारे फिरते हो! एक मात्र सत्य श्रीअकालपुरुष की सेवा को बिसारकर पीर, पैगंबर और औलियों के पीछे दौड़े, फिरते हो। महाराजा रामचंद्र और कृष्ण की औलाद, भीम और अर्जुन के वंशधर, आज एक साधारण मुसलमान सिपाही से थर थर काँपते हैं। हद हो चुकी। छोड़ो, छोड़ दो परस्पर के तुच्छ स्वार्थ को, उतार दो तुच्छ नीच इच्छा-रूपी मैले चीथड़े को, खड़े हो जाओ सामने श्री वाह गुरु के दर्बार के, आओ परस्पर हाथ मिलाओ, दूध पानी से एक हो जाओ, फिर देखोगे कि तुम क्या से क्या हो जाते हो। तुम्हारा प्रताप फिर चमक उठेगा। उपाय तरकीब बतलाने के लिये मैं हाजिर हूँ। तुम्हे केवल जड़ता छोड़कर हाथ पैर हिलाने की जरूरत है।" ऐसे ऐसे उत्साहपूर्ण वचनों से उन्होंने महीने भर, जब तक मेला रहा, खूब प्रचार किया, जिसका बड़ा प्रभाव पड़ा।

मेले में गुरु साहब का लंगर जैसा घर पर जारी रहता था, वैसा ही जारी रहा। जो आता, पेट भर भोजन और कड़ाह प्रसाद (हलुआ) पाता था। भूखी आत्माएँ लौकिक और अलौकिक दोनों प्रकार के भोजनों से तृप्त होकर घर जाती थीं। सहस्रों ने वीर-व्रत धारण किया और वे गुरु साहब के शिष्य हुए। सहस्रों रुपए नक़द और रत्न जवाहर भी भेंट में आए।

———

पाँचवाँ अध्याय

गुरु गोविंदसिंह का विद्या-प्रचार

यद्यपि मौखिक धर्मोपदेश, कथा-पुराण इत्यादि सुनाकर गुरु साहब शिष्यों में एक प्रकार की शिक्षा का प्रचार तो करते थे; पर एक अनुभवी सुधारक की तरह उन्हें यह बात भी अच्छी तरह ज्ञात थी कि "बिना नियमपूर्वक विद्याभ्यास किए मेरी शिष्य-मंडली के ज्ञान-नेत्र नहीं खुलेंगे और सच्चे मन से वे अंध-विश्वास और पुराने असत्य संस्कारों को भी त्याग नहीं सकेंगे।" अस्तु, इन्हें पंडित बनाना परम आवश्यक है, जिसमें इन्हें खोटे खरे की पहचान करने का विवेक हो जाय और जिसमें किसी के बहकाने में ये न आ जावें। गुरु साहब का चढ़ता प्रताप देखकर कई एक विद्वान् ब्राह्मण भी इनके पास सदा बने रहते थे। वे सदा गुरु साहब की हाँ में हाँ मिलाते और अपनी दक्षिणा सीधी करते थे। इन्हें और किसी बात से काम न था। केवल अपने स्वार्थ का ध्यान था। हा! दधीचि की संतान! तेरी यह दशा!! इसी कारण देश की यह दशा भी थी। जब शरीर का मुख्य भाग दिमाग, जो कि बुद्धि का निवासस्थान है, ऐसा हीन हो जाय तो फिर शरीर नष्ट-भ्रष्ट क्यों न हो! जब हिंदू समाज के नेता ब्राह्मणों की यह दशा हुई, तो फिर हिंदू जाति क्यों न पैर के नीचे कुचली जाती! क्यों वृद्ध महात्मा तेगबहादुरजी का सर सरे बाजार उतारा जाता? अस्तु, गुरु साहब भी इन बातों को खूब समझते थे। कभी कदाचित् पंडितों से इस विषय पर बहस छिड़ भी जाती कि

सर्वसाधारण को वेद-शास्त्रों के पढ़ने का अधिकार है या नहीं, तो ये स्वार्थी महात्मा लोग जैसा समय देखते वैसा उत्तर देते थे। अब गुरु साहब ने कुछ दिनों से खुले तौर पर कहना आरंभ किया कि "हमारे शिष्यों को नियमपूर्वक संस्कृत की शिक्षा दीजिए।" ब्राह्मण देवता बड़े घबराए। उन्हें चारों ओर अँधेरा दीखने लगा। यदि ये सब उजड्ड भोले-भाले क्षत्रिय वैश्य शूद्र गड़ेरिये पढ़ लिखकर विद्वान् हो गए तो फिर हमारी दाल क्योंकर गलेगी? अब तक संस्कृत विद्या का एकहत्था ठेका अपने हाथ में लेकर इन्हें मनमाना बहकाकर ये अपनी स्वार्थसिद्धि करते थे, अब यह क्या बला आई! अन्नदाता गुरु साहब कहते हैं कि इन्हें वेद शास्त्र पढ़ाओ। बड़ी आफत का सामना है। अस्तु, ये पंडित लोग गुरु साहब की बातों को सुन अनसुनी कर जाते और जब गुरु साहब ने नित्य कहना आरंभ किया तो आज साइत अच्छी नहीं है, अमुक दिन विद्यारंभ करावेंगे—ऐसा कहकर टालने लगे। आज भद्रा है, आज व्यतीपात है, आज वैधृती है ऐसे ही ऐसे बहाने नित्य करने लगे। कभी आश्लेषा आगे आ जाती, कभी मघा विद्यारंभ का मार्ग रोक देती। तात्पर्य यह कि महीनों यों ही बीत गए और इन स्वार्थी महात्माओं ने विद्यारंभ नहीं करवाया। जब गुरु साहब ने देखा कि ये व्यर्थ की टालमटोल कर रहे हैं, तब एक दिन उन्होंने बहुत नाराज होकर कहा कि "आप स्पष्ट बतलाइए कि विद्यारंभ करवाइएगा या नहीं? आप लोगों के भरोसे मेरा अमूल्य समय व्यर्थ जा रहा है।" तब तो पंडित रघुनाथजी को स्पष्ट कहना ही पड़ा कि "महाराज! खत्री अरोड़ों की तो कौन कहे; जाट, कहार, रँगरेटे तक आपके शिष्य हैं;

इनको वेद-शास्त्र मैं क्योंकर पढ़ा सकता हूँ?" इसपर गुरु साहब ने कहा कि 'हम बहुत प्रसन्न हैं कि आपने इतने दिनों बाद स्पष्ट उत्तर दिया। आप लोगों ने जिस विद्या को अपनी घर की विद्या बनाकर कुंजी के भीतर रख छोड़ा है, वह सत्य सनातन विद्या है, सभ्य मनुष्य मात्र के लिये है, परमात्मा की ओर से है। जब हिंदू जाति निर्बल और पद-दलित होने लगी, राजनैतिक झगड़ों से उसे अवकाश नहीं था कि इस ब्रह्मविद्या, अध्यात्म-विद्या को याद कर रखती उस समय इस कार्य्य को आप ब्राह्मण लोगों ने किया, सहस्रों वर्ष तक कंठाग्र रखकर इस विद्या की रक्षा की, उसके लिये हिंदू जाति बराबर आपकी कृतज्ञ है और रहेगी, आपको अपना सिरताज मानेगी और आपके चरण पूजती है तथा पूजती रहेगी। पर महाराज, यह विद्या, यह सब थाती सर्व साधारण की है क्योंकि परमात्मा की ओर से है। आप लोगों को उचित नहीं है कि सर्व साधारण की थाती को हजम कर जाँय और माँगने पर न दें। क्या कोई परमात्मा की दी हुई थाती हजम कर सकता है? क्या परमात्मा की दी हुई सूर्य्य की रोशनी, चंद्रमा की चाँदनी, शीतल-मंद-सुगंध वायु को भी आप अपनी पुस्तक में बंद रख सकते हैं? क्या चांडाल पर्य्यंत इस सुख को, परमात्मा के इस दान को, निष्कंटक भोग नहीं करते? फिर आप रखी हुई धरोहर के देने से इनकार क्यों करते हैं? क्या आप इसे रख सकेंगे? मुझे भय है कि कहीं एक दिन ऐसा न हो कि आपकी संतानों को इन्हीं हिंदू जाति के लोगों—हाँ, इन्हीं शूद्रों की संतानों—से वेद शास्त्र अध्ययन करना पड़े या आत्मज्ञान सीखना पड़े? यदि आप इसके प्रचार में ऐसे

पश्चात्पद रहेंगे तो लोग बलात् अपनी थाती, अपनी धरोहर, ले ही लेंगे। साथ ही आपकी अवनति होती रहेगी। इसलिये सब ओर विचारकर जैसा उचित समझें कीजिए। चिंता देना मेरा काम है।" इतना कहकर गुरु साहब ने जो कि सोचे हुए कार्य्य में विलंब करनेवाले नहीं थे, उसी दिन अपने पाँच बुद्धिमान् युवा शिष्यों को वेद-शास्त्र अध्ययनार्थ काशीजी को रवाना कर दिया। इन पाँचों को शुद्ध-निष्ठ ब्रह्मचारी-वेष बना, अमृत पान कराकर, गुरुजी ने काशी भेजा। ये लोग जिनका नाम कर्म्मसिंह, गंडासिंह, वीरसिंह, रामसिंह और शोभासिंह था, ब्राह्मचारी-वेष में काशी पहुँचे और वहाँ चेतन वट (जतनवट) में जाकर टिके और नियमपूर्वक बड़ी लगन से विद्याभ्यास करने लगे। कुछ दिन में पूर्ण पंडित होकर इन लोगों ने गुरु साहब को आकर दंडवत् किया। गुरु साहब ने पुनः पाँच शिष्य इसी प्रकार ब्रह्मचारी बना काशी भेजे। ये भी जब विद्याभ्यास कर लौट आए, तो पुनः पाँच शिष्य भेजे गए। वे भी उसी स्थान पर जाकर टिके और विद्याभ्यास करने लगे। इस प्रकार वे बराबर पारी पारी से शिष्यों को काशी भेजने लगे। ये लोग जहाँ जाकर टिके थे वहीं सिक्ख निर्मल पंडितों का भविष्य वासस्थान नियत हुआ जो अब तक निर्मलों (निर्मले साधुओं) के अधिकार में है। ये लोग सर्वशास्त्रों में व्युत्पन्न हैं। गुरु साहब लौटे हुए विद्या-प्राप्त शिष्यों से उपनिषद्, गीता, भागवत, महाभारत, विष्णु-पुराण, सबका अनुवाद करवा अपने शिष्यों में उनका प्रचार करने लगे। गुरु साहब यह बात खूब समझते थे कि जो जाती अपने पूर्व-पराक्रम को विसार देती है उसे फिर से उठाने के लिये उसी पराक्रम का स्मरण दिलाना परम आवश्यक है, जो

उसके पूर्व श्रुति, स्मृति, पुराण, गाथा के पढ़ने-पढ़ाने और सुनने-सुनाने ही से हो सकता है और तभी इसके दृष्टांत उनके चित्त पर बखूबी अंकित हो सकते हैं !

अस्तु: जब इन ग्रंथों का अनुवाद हो गया तब पारी पारी से नियमपूर्वक सब शिष्यों को इनकी कथा सुनाने और वेदांतशास्त्र तथा निष्काम कर्म का मर्म समझाने का कार्य्य प्रारंभ हुआ। केवल इतने ही से संतुष्ट न होकर, चालीस पचास पंडितों को इन्होंने अपने यहाँ यथायोग्य वेतन देकर नौकर रख लिया तथा वेद, स्मृति, धर्म्मशास्त्र पुराण और महाभारत का अनुवाद, व्याख्यान और प्रचार होने लगा। अन्य मत-मतांतर की पुस्तकें भी जब गुरु साहब के सामने आतीं, वे उनका अवलोकन करते, विशेष विशेष अंश पंडितों से पढ़वाकर सुनते, उसपर वाद-विवाद करते और जिसका अनुवाद करवाना, प्रचार करवाना उचित समझते. उसके अनुवाद की आज्ञा पंडितों को देते। प्राचीन पुस्तकें खोज खोजकर संग्रह करने के लिये भी पंडितों की एक टोली नियत थी। इनके द्वारा जब कोई प्राचीन अलभ्य ग्रंथ हाथ लगता, तो वे उसे बड़े ध्यान से पढ़ते पढ़वाते और उसका मर्म समझते अथवा अति उपयोगी समझते तो अनुवाद को भी आज्ञा देते। यों तो गुरु साहब की शस्त्र और युद्ध विद्या ही पर अधिक प्रीति थी; किंतु विद्या-प्रचार के भी ये पूरे प्रेमी थे और इनकी स्मरण-शक्ति भी अद्‌भुत थी।

गुरु नानकदेवजी के समय से प्रत्येक गुरु ने अपने अपने समय में ज्ञान, भक्ति और योग-मार्ग के जो उत्तमोत्तम गूढ़ वचन उच्चारण किए थे, उन सबको एकत्र कर गुरु अर्जुनजी साहब ने 'ग्रंथ साहब' के नाम से एक ग्रंथ निर्म्माण किया

था। गुरु महाराजों के सिवा इसमें, कबीर, दादू, सूर, तुलसी, सभी अच्छे अच्छे महात्माओं की उक्ति और उपदेशावली थी। उस समम यह ग्रंथ कर्तारपुर के, जहाँ अंत समय गुरु नानकदेवजी रहे थे, रहनेवाले सोढ़ी खत्री धीरमल्ल के पास था। गुरु साहब ने अपने पिता गुरु तेगबहादुर की वाणी तथा स्वयं भी कुछ लिखने के लिये धीरमल्ल से वह ग्रंथ माँगा पर धीरमल्ल ने यह समझकर कि "ये भक्ति-ज्ञान की बातें क्या जानें, ये तो तीर, तलवार और तमंचे के भक्त हैं" और शायद यह समझकर कि मेरे हाथ से निकल जाने पर फिर यह ग्रंथ मुझे प्राप्त न हो और गुरु साहब अपने पास ही रख लें, उसे देने से इनकार किया। कई बार तगादा करने पर उसने कहला भेजा—"यदि तुम सच्चे गुरु हो तो तुम्हें सारा ग्रंथ कंठाग्र ही होगा। फिर तुम्हें इस ग्रंथ की क्या आवश्यकता है ?" गुरु साहब यह ताना सुनकर कुछ न बोले, चुप रहे और संवत् १७६२ में जब अवकाश मिला तो आश्विन वदी १ से अपनी स्मरण-शक्ति से "आदि गुरु ग्रंथ साहब" को लिखवाने लगे। ग्रंथ साहब की वाणियाँ जो गुरु तेगबहादुरजी ने बचपन में इन्हें सिखाई थीं, सब इन्हें ज्यों की त्यों कंठाग्र थीं। उनके लिये यह कार्य्य असंभव न था। पर जिस समय उन्होंने धीरमल्ल से यह ग्रंथ माँगा था, उस समय लड़ाई-भिड़ाई के कारण उन्हें इतना अवकाश न था कि अपनी स्मरण-शक्ति से ग्रंथ लिखवाते। इसी लिये उस समय ये चुप रह गए थे और जब अवकाश मिला तो निराले तलवंडी नामक ग्राम में आकर यह ग्रंथ लिखा जाने लगा। नित्य प्रातःकाल स्नान, ध्यान और नित्य-क्रिया से निपटकर गुरु साहब एक खेमे के भीतर बैठ जाते और बाहर

उनके शिष्य मनीसिंहजी गुरु साहब के कथनानुसार ग्रंथ लिखते जाते थे। कहीं किसी जगह भी एक मात्रा का हेर-फेर नहीं पड़ा। नौ महीना नौ दिन में आदि ग्रंथ ज्यों का त्यों, अर्थात् गुरु अर्जुनजी साहब ने जैसा लिखा था, बनकर तैयार हो गया। केवल एक जगह अपने मन से गुरु साहब ने कबीरजी की एक वाणी का अंतिम चरण बदला था। वह अंतिम चरण "कहें कबीर जन भए खुलासे" था, जिसे गुरु साहब ने "कहें कबीर जन भए खालसे" कर दिया। इसके सिवाय और कहीं कुछ भी फर्क न था। जब सब पहले गुरुओं की वाणी सहित ग्रंथ ज्यों का त्यों तैयार हो गया, तो इस पर उन्होंने अपने पिता "गुरु तेगबहादुरजी" की वाणी चढ़ाई और "दमा दमा वालीबीड़" के नाम से यह ग्रंथ प्रसिद्ध हुआ। मौके मौके से उन्होंने इसमें अपनी वाणी का भी समावेश किया और फिर पीछे की वाणियाँ चढ़ाई गईं। गुरु साहब ने तत्काल ही अपने ग्रंथ की कई प्रतियाँ लिखवाईं और नकल करवाकर भिन्न भिन्न स्थानों को भेज दीं। इसके सिवा 'विचित्र नाटक' नाम का एक ग्रंथ गुरु साहब ने स्वयं भी निर्माण किया, जिसमें अपने पूर्व-जन्म से लेकर, सारा जीवन-चरित्र लिखा। यह एक प्रकार का आत्मचरित्र है। इसमें अपनी कुल लड़ाई, आफत, विपत्ति, परीक्षा, लड़ाई की तैयारी, कठिनाई जो जो उन्हें झेलनी पड़ी, सब का सविस्तर वर्णन और अंत में अपना अनुभव, भावी भारत का कर्त्तव्य बड़ी ओजस्विनी भाषा में वर्णित किया। इन्हें इस बात का पूरा ध्यान था कि मेरे बाद भी मेरे अनुभव से लोग लाभ उठावें और अपने कर्त्तव्य का मार्ग पहचानें।

गुरु साहब विद्वानों का बहुत सत्कार करते और यदि कोई

गुणी इनके दर्बार में आता तो उसका अवश्य यथायोग्य सत्कार होता था। यदि उपयोगी समझते तो उसे उपयुक्त वेतन देकर वे अपने पास रख लेते थे और उसके गुणों और विद्या से समुचित्त लाभ उठाते और शिष्यों में भी उस विद्या का प्रचार करवाते थे। तात्पर्य्य यह कि इनकी सभा भी एक खासे राजे महाराजे या अच्छे बड़े बादशाही सूबों की सी हो गई और उसकी रौनक दिन पर दिन बढ़ने लगी। एक तरफ अच्छे अच्छे विद्वान् पंडित, दूसरी ओर बड़े बड़े शूर-वीर योद्धा युद्ध-विद्या में निपुण, कहीं उत्तमोत्तम गायक, कवि, चित्रकार सभी देख पड़ते थे और गुरु साहब तारागण से वेष्ठित पूर्ण चंद्र की तरह शोभायमान थे। वे ही जाट सिक्ख जो पहले बिल्कुल मूर्ख थे, गुरु साहब की कृपा से सब विद्वान्, गुणी हो चले। जिन्हें केवल पहले हल चलाना आता था, वे अब वेदों के मंत्र पढ़ने, धर्मशास्त्र के सूत्रों की व्याख्या करने और पुराण इतिहासों पर तर्क-वितर्क करने लगे। पहले लट्ठबाजी में जिनका जीवन व्यतीत होता था, वे अब नियमपूर्वक कवायद करने और बरछी, नेजा तथा बंदूक का निशाना लगाने लगे। तात्पर्य्य यह कि गुरु साहब अन्य सुधारकों की तरह केवल उपदेश देकर ही शांत न थे, बरन् मौखिक उपदेश से चतुर्गुण उद्यम लोगों को वास्तव में वैसा ही बनाने के लिये करते थे। उनके लिये तन मन धन सब अर्पण करने को प्रस्तुत रहते थे। इस उद्यम में इन्होंने कभी शिथिलता नहीं आने दी। जब संवत् १७४७ विक्रमी में माता जीतोजी के गर्भ से गुरु साहब के घर एक पुत्र-रत्न हुआ तो उन्होंने बड़ा उत्सव मनाया और एक वीर पिता की तरह उसका नाम जुझारसिंह रखा। दूसरा पुत्र मार्गशीर्ष ५ सं० १७५३ में हुआ। उसका नाम जोरावरसिंह

रखा गया। तीसरा फाल्गुन सुदी ७ संवत् १७५५ में हुआ था जिसका नाम फतहसिंह पड़ा। इन पुत्रों के जन्म की खुशी में गुरु साहब ने एक बड़ा भारी यज्ञ-महोत्सव किया जिसमें अच्छे विद्वान् पंडित ब्राह्मण पधारे थे। गुरु साहब ने सब का बड़ा समादर किया। वे समय के परखने और मनुष्यों की जाँच करने में सदा दत्तचित्त रहते थे। वे खूब जानते थे कि मुझे बड़ा भारी काम करना है, इसलिये समय समय पर इसकी जाँच अवश्य करते रहना उचित है कि समय पर कौन काम आवेगा, कौन अपनी प्रतिज्ञा और धर्म्म पर दृढ़ है तथा कौन केवल स्वार्थ के लिये मेरे दर्बार में जमा हो गया है। अस्तु; उपस्थित ब्राह्मण-मंडली को भोजन पर बैठाते समय गुरु साहब ने कहा—"जो ब्राह्मण मांस भक्षण करेंगे, वे एक एक अशरफी दक्षिणा पावेंगे और जो नहीं करेंगे, वे खाली हाथ घर जायँगे।" यह सुनकर सिवा पाँच धर्म्मवीरों के सब ब्राह्मणों ने मांस भोजन कर लिया। इन्होंने कहा कि चाहे स्वर्ण का पहाड़ ही क्यों न दे दीजिए, हम लोग मांस भक्षण नहीं करेंगे। गुरु साहब ने इन पाँचों का बड़ा सत्कार किया। उनके धर्म्मभाव की बड़ी प्रशंसा की और उन्हें अपने पास रख लिया। इसी तरह एक बार इन्होंने अपने शिष्यों के परीक्षार्थ एक गधे को शेर की खाल उढ़ाकर छोड़ दिया। उसे देखकर सब भागने लगे; पर गुरु के शिष्यों में से एक भाई हिम्मत करके पास जा पहुँचा और उसने एक ही बार में गधे का काम तमाम कर दिया। पूछने पर गुरु साहब ने शिष्य-मंडली से कहा कि तुम लोग भी ठीक गधे के तुल्य हो। उत्तम उपदेश देकर अर्थात् शेर की खाल उढ़ाकर हमने तुम्हें शेर बना दिया

है। पर जब तक इस उपदेश पर कमर कसकर चलना नहीं सीखोगे, असली सिंह नहीं बन सकते और गधे की तरह शत्रु द्वारा मारे जाओगे। इसलिये मिथ्या धर्म्म-विश्वास, ऊँच नीच जातिभेद की शाखा-प्रशाखा, खान-पान कच्ची-पक्की का व्यर्थ आडंबर, चौके-चूल्हे का बखेड़ा चूल्हे में डालो और सच्चे पुरुष-सिंह बनो। केवल शेर की खाल लपेट लेने से सिंह नहीं बन सकते, उपदेशों को आचरण में लाकर बरतो और दूसरे के दृष्टांत बनो; तभी तुम्हें सफलता होगी। इसलिये उपदेशवत् आचरण करने का व्रत आज ही से धारण कर लो। इसमें गफलत करने की आवश्यकता नहीं है। सोते बहुत दिन हुए, अब जाग उठो। मैंने जो जो उपदेश दिए हैं और जो आगे दूँ सबको एक एक करके ध्यान में अच्छी तरह जमाकर, एक एक पर दृढ़ता से नियम करके चलना आरंभ करो, तभी सच्चे सिंह बनोगे। जरा भी ढील-ढाल मत करना; नहीं तो कसर रह जायगी और जरा सी कसर ही, छोटा सा छिद्र ही अंत को बड़े भारी सर्वनाश का कारण हो जाता है। गुरु साहब के इस उपदेश के अनुसार शिष्यगण बड़ी मुस्तैदी से उनकी शिक्षाओं पर चलने के लिये कटिबद्ध हो गए और दिनों दिन उन्नत होने लगे।

छठा अध्याय

गुरु साहब का दुर्गा से वर प्राप्त करना

गुरु साहब का यह नियम था कि नित्य संध्या को पंडित कालिदास से कभी महाभारत की और कभी रामायण की कथा सुनते थे। ये पंडितजी उन्हीं पाँचों में से एक थे, जिन्होंने अशरफी के लालच से भी मांस नहीं खाया था। ये नित्य बड़ी प्रीति से गुरु साहब को कथा सुनाया करते। जहाँ कहीं भगवान् रामचंद्र की पितृभक्ति, भरत के भ्रातृ-प्रेम, भीष्म के बाल ब्रह्मचर्य्य, युधिष्ठिर की धर्म्मभीरुता या अर्जुन और भीम की शूर-वीरता का वर्णन आता, गुरु साहब बड़े ध्यान से सुनते और धन्य धन्य करने लगते थे। "क्यों न हो, बहादुरी हो तो ऐसी हो। धैर्य्य हो तो ऐसा हो। दृढ़ व्रत हो तो ऐसा हो।" ऐसे वचनों को उच्चारण कर वे उत्साह प्रकट करते और कहते—'अहो भारत-संतान! तुझको क्या हो गया? अब फिर क्या तू ऐसी न होगी?' इन वचनों को सुनकर पंडितजी एक दिन बोल उठे—"गुरु महाराज, वर्तमान में भारत-संतान का ऐसा होना दुर्घट है। ये सब जो महापुरुष हो गए हैं, दैवी शक्ति-संपन्न थे। देवी-देवता से विशेष तौर पर इन्होंने वर प्राप्त किया था, तभी ऐसे ऐसे अद्भुत कार्य्य कर सकते थे। सो आप भी यदि चाहते हैं कि कोई ऐसा ही महान् कार्य्य साधन कर सकें तो किसी देवी-देवता को प्रसन्न कीजिए, तब कार्य्य-सिद्धि होगी।" पंडितजी के यह स्वार्थपूर्ण वचन सुन गुरु साहब कुछ सोचने के उपरांत बोले—"क्यों पंडितजी,

देवी-देवता किस शक्ति से, किसके वल से, वल पा ऐसे प्रभाव-शाली हुए हैं ? क्या अपनी साधना और तपस्या के प्रभाव से नहीं हुए ? आपके पुराण ही कह रहे हैं कि एकमात्र अकाल पुरुष के अर्थ तपस्या कर सव देवी-देवता शक्ति-संपन्न हुए हैं। फिर जिसको स्वयमेव दूसरे का आसरा है, उसका पकड़ना बुद्धिमानों का काम नहीं है। वह सहारा पायदार नहीं है। उसका नाश है। सहारा उसी का लेना उचित है जो अविनाशी हो। विना अकाल पुरुष की शक्ति के कोई शक्तिमान् नहीं हो सकता। हम सबमें स्वभावतः वह शक्ति विद्यमान है। जैसे काष्ठ में अग्नि है; पर यत्न से प्रकट होती है, वैसे ही हम सवमें उस अनंत शक्ति का भांडार भरा पड़ा है। यत्न से उसे प्रकट करने की आवश्यकता है। और किसी प्रकार की साधना से कार्य्यसिद्धि नहीं हो सकती।" इस पर पंडितजी वोले कि आप ठीक कहते हैं पर इस काल में भगवती दुर्गा ऐसी जागती ज्योति दूसरी नहीं है। जव जिसको कोई महान् यज्ञ, बड़ा काम करने की इच्छा हुई है, तव भगवती श्रीदुर्गाजी का ही वरदान उसने प्राप्त किया है। भगवान् रामचंद्र को भी रावण का संहार करने के पहले इनकी उपासना करनी पड़ी थी। पांडवों को युद्ध से पहले इनसे वरदान प्राप्त करना पड़ा था; और देखिए कलि में तो इसकी शक्ति प्रत्यक्ष है। जिसने विधिवत् इनका पुरश्चरण जपा-नुष्ठान किया उसके कार्य्य कभी असिद्ध नहीं रहते। भगवती स्वयमेव प्रकट होकर उसे सिद्धि प्रदान करती हैं। इसपर गुरु साहव कुछ देर तक इस प्रकार सोचते रहे—असली शक्ति दुर्गा तो वही प्रकृति देवी है, जिसके आधार से ब्रह्मांड रचा गया है और वह सब जगत् की माता है। सव प्राणियों में वह

स्वभावतः ही वर्तमान है। रामचंद्र इत्यादि ने भी युद्ध के पहले इसका अनुभव किया, बल संचय किया, शक्ति को प्रकट किया तभी युद्ध में वे विजयी हुए। पत्थर के आगे नाक रगड़ने से नहीं हुए। पर वर्तमान हिंदू प्रजा सहसा इस व्याख्या को नहीं मानेगी। इस समय के मिथ्या विश्वासों ने इनकी बुद्धि पर जंग लगा दिया है, और मुझे इन्हीं लोगों से काम लेना है। इसलिये इन्हें सत्यासत्य का विवेक तो अवश्य करा देना चाहिए। सच्चे विश्वासियों को क्या कोई स्वार्थी बहका सकता है? पंडितजी के कहे अनुसार यज्ञ और जपानुष्ठान करके सारी हिंदू प्रजा को परीक्षापूर्वक सत्यासत्य का विवेक अवश्य करा देना चाहिए। ऐसा सोचकर गुरु साहब बोले—"क्यों पंडितजी, इस काल में भी भगवती प्रकट हो सकती हैं ?।"

पंडितजी—"क्यों नहीं, विधिवत् अनुष्ठान करने से अवश्य प्रकट होंगी।"

गुरु साहब—"क्या आपको इसकी विधि मालूम है ?"

पंडितजी—"मालूम क्यों नहीं है ? पर और भी काशी इत्यादि स्थानों से बड़े बड़े मंत्रशास्त्री पंडितों को बुलाना होगा। इसमें बहुत द्रव्य की आवश्यकता है।"

गुरु साहब—"अंदाज से कितना द्रव्य यथेष्ट होगा ?"

पंडितजी—"एक लक्ष मुद्रा से कम तो न होगा।"

गुरु साहब—"खैर कोई हर्ज नहीं, आप जिन लोगों को बुलाना चाहते हैं सबको निमंत्रण-पत्र भेज दें। मैं इतना द्रव्य खर्च करने के लिये तैयार हूँ।"

पंडितजी ने उसी समय निमंत्रण भेज दिए और कुछ दिवस में दूर दूर से बड़े बड़े मंत्रशास्त्री, जपानुष्ठान, लच्छेदार जनेऊ पहने और शिखा में बेलपत्र बाँधे गुरु साहब की राज-

धानी आनंदपुर में आ विराजे। चारों ओर ब्राह्मण ही ब्राह्मण दिखाई देने लगे। जब सब लोग एकत्र हुए तो पंडित कालिदास ने ब्राह्मणों की एक सभा की और जप, अनुष्ठान, हवन इत्यादि की सब सामग्री की सूची बनाना आरंभ किया। ब्राह्मणों ने हवन-सामग्री घृत, सुगंधित द्रव्य, यज्ञपात्र, वरणी के लिये रेशमी वस्त्र इत्यादि सब बहुत सा सामान लिखवा दिया, जो दक्षिणा इत्यादि को जोड़कर करीब दो लाख रुपए के हुआ। तब तो पंडितजी बोले कि भाइयो, मैंने तो गुरु साहब से एक लाख की बात कही है। दो लाख कहने से तो बात हलकी पड़ेगी और गुरु साहब मुझे लालची समझेंगे। इस पर उपस्थित पंडित-मंडली ने पूछा—"यजमान दाता और समर्थ है कि नहीं?" पंडितजी ने कहा कि यजमान कृपण नहीं है और समर्थ भी है। तब तो ये लोग बोल उठे—"वाह! पंडितजी वाह! फिर चिंता किस बात की है? ऐसा यजमान क्या रोज मिलता है? जब वह दाता और समर्थ है तो फिर अधिक सोच-विचार की क्या आवश्यकता है? उसके सामने चिट्ठा उपस्थित कीजिए।" पं० कालिदासजी ने बहुत कुछ हिचकिचाते हुए गुरुजी के सामने सूची उपस्थित की। गुरु साहब बोले—"कोई हर्ज नहीं, हम दो लाख भी खर्च करने को तैयार हैं, आप कार्य आरंभ कीजिए।" यद्यपि इस समय गुरु साहब को युद्धोपयोगी सामान इत्यादि तैयार कराने के लिये द्रव्य की बहुत आवश्यकता थी; पर सारी हिंदू प्रजा को एक बार असली शक्ति कौन है, इसका प्रत्यक्ष हो जाय और वे लोग व्यर्थ के विश्वास को त्याग दें, यह उनकी आंतरिक इच्छा थी। दूसरे इन ब्राह्मणों को असंतुष्ट कर अपने अनुगामियों को वे नाराज भी नहीं करना

चाहते थे और इस यज्ञ का हिंदू प्रजा पर अवश्य कुछ न कुछ उत्तम प्रभाव पड़ेगा, यह जानकर उन्होंने दो लाख रुपए खर्च करने से भी नाहीं नहीं की और कहा—"पंडितजी, अब तो सब प्रबंध हो गया। अब दुर्गा के प्रकट होने में कोई बाधा तो न होगी ?" पंडितजी ने कहा—"नहीं गुरु महाराज, अब कोई बाधा नहीं है। हम लोग कार्य आरंभ करते हैं।" आनंदपुर से सात कोस पर पर्वत के ऊपर नयनादेवी का एक मंदिर है। वहीं एकत्र होकर ब्राह्मण-मंडली ने यज्ञ रचा। चारों ओर कदली के खंभ गाड़ पुष्प लता इत्यादि के वंदन-वारों से शोभित कर बड़ा भारी शोभायमान यज्ञ-कुंड रचा गया। पंडित कालिदास आचार्य हुए और काशी के देवदत्त शास्त्रीजी ब्रह्मा नियत हुए तथा उपयुक्त उद्गाता और अध्वर्यु को नियत कर यज्ञ आरंभ किया गया। एक सौ आठ ब्राह्मण चंडी पाठ करने और उतने ही दुर्गा देवी का मंत्र जप करने लगे। बड़ा भारी समारोह ब्राह्मणों का हुआ। नित्य मनों घृत और सुगंधित द्रव्य यज्ञ में पड़ता और वेदध्वनि तथा स्वाहा से दिशा गुंजायमान हो जाती थी। गुरु साहब ने प्रबंध के लिये अपने मुसाहबों को तैनात कर दिया था। आस-पास के ग्रामों और नगरों में इस यज्ञ की बड़ी चर्चा फैल गई। दूर दूर से सहस्रों नर-नारी नाना प्रकार के मेवा-मिष्टान्न, वस्त्र और द्रव्य भेंट के निमित्त लेकर दर्शनों को आने लगे और बड़ी श्रद्धा-भक्ति से दर्शन कर चढ़ाने और कृतकृत्य होने लगे। गुरु साहब भी नित्य घोड़े पर सवार हो संध्या को यज्ञ-मंडप में जाते और ब्राह्मणों से आशीर्वाद का पुण्य लेकर चले आते थे। यह पुरश्चरण चालीस दिवस का था। जब एक मास व्यतीत हो गया तो गुरु साहब ने कहा—"पंडितजी, एक

मास तो व्यतीत हो गया। अब तक दुर्गा के प्रकट होने के कोई लक्षण तो नहीं दिखाई दिए।" इस पर आचार्य्य ने उत्तर दिया—"गुरु साहब एक बात है। यदि आप क्रुद्ध न हों तो कहूँ।" गुरु साहब ने कहा—"बेखटके कहिए।" पंडित जी बोले कि जब इस प्रकार का कोई यज्ञ या जप अनुष्ठान किया कराया जाता है, तो यजमान को नियम धारण कर रहना उचित है। किसी प्रकार का पशु-घात या हिंसा इत्यादि कार्य्य न करना चाहिए। पर आप नित्य आखेट करते हैं और दो चार निरीह प्राणियों का संहार करते हैं; इसलिये दुर्गा प्रकट नहीं होती।" पंडितजी जानते थे कि गुरु साहब को शिकार खेलने का बेहद शौक है, वह शिकार खेलना छोड़ेंगे नहीं और हम अनायास कह देंगे कि "आपने तामसी वृत्ति नहीं त्यागी, इसीलिये भवानी प्रकट नहीं हुई।" पर गुरु साहब ने कहा—"पंडितजी, आपने पहले क्यों नहीं कहा? मैं शिकार खेलना छोड़ देता। अच्छा अब भी कोई हर्ज नहीं है। दस दिन बाकी हैं। मैंने आज से शिकार खेलना छोड़ा। आप भवानी को प्रसन्न करने का उपाय कीजिऐ।" उस दिन से गुरु साहब ने शिकार खेलना छोड़ दिया और हवन-यज्ञ-जप-पूजा यथावत् होती रही। गुरु साहब भी नित्य नियमपूर्वक आते रहे; पर दुर्गा के प्रकट होने के कोई लक्षण दिखाई नहीं दिए। देखते देखते पूर्णाहुति का चालीसवाँ दिवस भी आ उपस्थित हुआ। ब्राह्मणों ने बहुत सी सामग्री बचा रखी थी। संध्या को जब गुरु साहब आए और आचार्य्य से पूछा कि कहिए पंडितजी, क्या समाचार है? तो पंडितजी ने कहा—"अब विलंब नहीं है। यज्ञ पूर्ण होते ही दुर्गा प्रकट होगी। इसके लक्षण सब प्रत्यक्ष

होने लगे हैं।" गुरु साहब उस रोज भी वापस गए। दूसरे दिवस फिर जब आए और पूछा—"दुर्गा कहाँ प्रकट हुई ?" तो पंडितजी बोले कि प्रकट होने में कोई विलंब नहीं है। माता किसी कुलीन मनुष्य का बलि चाहती है। इसमें भी पंडितजी की चतुराई थी कि न नरबलि मिलेगी और न देवी प्रकट होंगी। इतना सुनते ही गुरु साहब बड़े क्रुद्ध हुए। झट म्यान से तलवार निकाल आचार्य्य की खोपड़ी पर जा पहुँचे और बड़े गंभीर स्वर से बोले—अहो, महाराज धन्य हैं आप !! आइए, तैयार हो जाइए, आपसे बढ़कर मुझे और तो कोई कुलीन बलि नहीं दिखाई देती। अब दुर्गाजी के सामने धर्मार्थ बलि चढ़ने के लिये मस्तक अर्पण कीजिए। गुरु की उग्र मूर्ति, उनकी लाल आँखें और हाथ में नंगी तलवार तथा बलि चढ़ने की ललकार सुनकर तो पंडितजी के होश हवा हो गए। हाय अब क्या करें ? कहाँ जाँय ? गुरु साहब तो उन्मत्त हो गए हैं ! हाय, क्या यों मरना पड़ा ? जीते जी अग्निकुंड में जलना पड़ेगा। हाय ! हाय !! क्यों यज्ञ कराया ? अपने हाथ अपनी जान गँवाई। कोइ तो उपाय प्राण बचाने का करना चाहिए। यही सोचकर पंडितजी का चेहरा जर्द हो गया। हाथ-पैर थरथर काँपने लगे। जबान सूखकर ऐंठ गई। बड़ी कठिनाई से इतना बोले—महाराज, थोड़ा सा अवकाश दीजिए। मैं शौच स्नान से निवृत्त होकर आता हूँ। गुरु साहब ने जो कि वास्तव में इनको मारना नहीं चाहते थे, इनको जाने की आज्ञा दी। पंडितजी की जान में जान आई। धीरे से वहाँ से ऐसे खिसके कि फिर कहीं पता भी न लगा। गुरु साहब बहुत देर तक अग्निकुंड के सामने नंगी तलवार लिए खड़े रहे। पंडितजी नहीं लौटे

और बहुत कुछ खोज करने पर भी उनका पता न लगा। इसी बीच में सारे मुख्य मुख्य पंडित आचार्य्यजी की दशा देखकर धीरे धीरे खिसक गए। गुरु साहब ने जब देखा कि पंडित-मंडली सब खिसक गई, तो बची बचाई जो कुछ हवन सामग्री थी, सब उन्होंने यज्ञकुंड में एक ही बार छोड़ दी, जिससे यज्ञकुंड की ज्वाला बड़ी ऊँची हुई और बहुत दूर तक दिग्-दिगंतर में प्रकाश फैल गया। वे लोग; जो कि देवी प्रकट करने के अर्थ गुरु साहब का यज्ञ करना सुन चुके थे, बड़े भारी प्रकाश को देखकर समझे कि आज शायद गुरु साहब की देवी प्रकट हुईं। सब एकत्र हो आनंदपुर में आ गुरु साहब की बाट जोहने लगे। गुरु साहब वहाँ से उसी तरह हाथ में नंगी तलवार लिए आनंदपुर को चले आए। लोगों ने पूछा कि महाराज देवी प्रकट हुईं ? गुरु साहब ने नंगी तलवार दिखाकर कहा कि लो देखो, यही देवी हैं! उपस्थित जन-मंडली में से सब ने यह समझा कि देवी ने प्रकट हो, अपने हाथ से गुरु साहब को यह तलवार दी है। गुरु साहब को साक्षात् भगवती-दत्त अस्त्र प्राप्त हुआ है। वे अब अजेय हो गए हैं। यही चर्चा क्रमशः फैलने लगी और दूर दूर से भक्तगण भगवती-दत्त कृपाण के दर्शन करने आने लगे। गुरु साहब के बहुत से अनुगामियों को, जो कुछ भी बुद्धि रखते थे, ब्राह्मणों का छल प्रकट हो गया और सचमुच नंगी तलवार और बाहुबल ही सच्ची शक्ति है, साक्षात् दुर्गा है, यह उनकी समझ में ठीक आ गया। सरल विश्वासी लोगों ने गुरु साहब को भगवती का साक्षात् वरपुत्र माना और समझदारों ने उन्हें अपने सच्चे हितैषी, धर्मरक्षक और देश-भक्त के रूप में देखा। 'जाकी रही भावना जैसी। हरि-मूरति

देखी तिन्ह तैसी।' इस विषय में अब तक भी यही हाल है। बहुत से श्रद्धालु भक्तों का यही विश्वास है कि साक्षात् दुर्गा ने प्रकट होकर गुरु साहब को अपने हाथ से तलवार दी। जो हो, अपनी अपनी रुचि के अनुसार जिसको जैसा भाया उसने वैसा ही विश्वास किया। पर एक बात अवश्य हुई कि अब से गुरु साहब का प्रभाव बहुत बढ़ गया। कई लोग उन्हें दैवी शक्ति-संपन्न समझने और साक्षात् भगवती का वर पुत्र मानने लगे। गुरु साहब के उद्देश्य को इससे लाभ ही पहुँचा और युद्धार्थी भक्त शिष्यों की वृद्धि होने लगी। यज्ञ पूर्ण होने पर गुरु साहब ने भारी जन-मंडली को भोजन कराया और सबका यथोचित सत्कार करके आए हुए ब्राह्मणों को यथोचित दक्षिणा इत्यादि दे विदा किया।

सातवाँ अध्याय

गुरुगोविंदसिंह का शिष्यों की परीक्षा लेना और मंत्रोपदेश करना

गुरु साहब साक्षात् भवानी के वर-पुत्र नियत हुए हैं और उन्हें दैवी अस्त्र प्राप्त हुआ है, इसकी चर्चा देश-देशांतर में फैल गई थी और शिष्यों पर इसका कुछ प्रभाव भी पड़ा था। पर यह प्रभाव कहाँ तक पड़ा है और उनके अनुगामी गुरु साहब के लिये कहाँ तक स्वार्थत्याग करने को प्रस्तुत हैं, इसकी परीक्षा करना उन्होंने उचित समझा। तदनुसार संवत् १७५५ विक्रमी के चैत्र शुक्ल में गुरु साहब ने देश-देशांतर सब स्थानों में आज्ञा-पत्र भेज दिया कि पूर्णिमा के दिवस आनंदपुर में एक बड़ा महोत्सव होगा। सब लोगों को अवश्य पधारना चाहिए। गुरु साहब का आज्ञापत्र पा दूर दूर से आकर शिष्य-वर्ग इकट्ठे होने लगे। नियत दिन गुरु साहब ने तंबू कनात खड़ा करवाया, पुष्प, तोरण, बंदनवार बँधवाए, एक बड़ा भारी सभामंडप रचा और सभामंडप के पीछे एक तंबू खड़ा करवाया, जिसके द्वार पर परदा पड़ा हुआ था। भीतरी तंबू से आरंभ होती हुई सभागृह तक एक पक्की नाली बनवाई, और पाँच बकरे मँगवाकर, जिसका समाचार किसी को भी विदित नहीं था, छिपाकर भीतर तंबू में बाँध दिए। जब दरबार इकट्ठा हो गया, बड़े बड़े धनी-मानी शिष्य लोग अपने अपने स्थान पर बैठ गए—जिनमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और अंत्यज जाति तक के लोग थे—तब गुरु साहब सभागृह में पधारे। इनके पधारते ही उपस्थित जन-मंडली उठ

खड़ी हुई और सबने "सत्य श्रीअकाल पुरुष की जय", "वाह गुरु की फतह" आदि शब्दों से गुरु साहब का जयजयकार किया। गुरु साहब सिंहासनासीन नहीं हुए। खड़े ही रहे और उन्होंने उपस्थित जन-मंडली को बैठने का इशारा किया। जब सब लोग बैठ गए तो गुरु साहब ने कहना आरंभ किया- "भाइयो! सत्य श्रीअकाल पुरुष की महिमा और आप लोगों के पुण्यबल से श्री दुर्गा भवानी के प्रसन्नार्थ जो यज्ञ मैंने रचा था, वह पूर्ण हुआ है। धर्म्म की रक्षा और देश के भावी मंगल के लिये माता दुर्गा भवानी ने मुझसे कुछ भेंट माँगी है। बिना भेंट पाए वह पूर्ण तृप्त नहीं होगी। पर वह भेंट देना मेरी शक्ति से बाहर है; इसी लिये मैंने आप लोगों को यहाँ आने का कष्ट दिया है कि आप इस कार्य्य में मेरी सहायता करेंगे।" उपस्थित जन-मंडली बोल उठी—'जो गुरु साहब की आज्ञा होगी, हम लोग उसे पालन करने के लिये तैयार हैं।' पुनः गुरु साहब ने कहना आरंभ किया—"आप लोगों से मुझे बड़ी आशा है। आप अवश्य अपनी प्रतिज्ञा का पालन करेंगे। अब उस भेंट का वृत्तांत ध्यानपूर्वक सुनिए। श्री दुर्गा भवानी मुझसे पाँच शिष्यों की बलि चाहती हैं। सो आप लोगों में से ऐसा कोई गुरु का सच्चा भक्त, धर्म पर प्राण देनेवाला, है जो भवानी के लिये, धर्म्म और देश के कल्याण के लिये, सिर दे?" इतना कहकर गुरु साहब ने म्यान से तलवार खींच ली। गुरु साहब के वचनों को सुन और हाथ में नंगी तलवार खींचे उनकी उग्र मूर्त्ति को देखकर बहुतों के होश-हवास गुम हो गए। बेचारे बड़े चाव से गुरु साहब का निमंत्रण पाकर महोत्सव में सम्मिलित होने आए थे। कई रोज तक कड़ाह-प्रसाद (हलुआ) छका अब था, यह क्या बला आई? क्या

गुरु साहब पागल तो नहीं हो गए ? ऐसी ऐसी भावनाएँ बहुतों के चित्त में उठने लगीं। सारी सभा में सन्नाटा छा गया। शिष्य-वर्ग विस्मित और भयभीत होकर गुरु साहब की ओर निहारने लगे। जब कोई कुछ न बोला और न हिला तो पुनः गुरु साहब ने गरजकर कहा—"क्या सत्य धर्म्म और गुरु के लिये कोई सिर देने को तैयार नहीं ?" इतना कहते ही लाहौर-निवासी भाई दयासिंह नाम का एक क्षत्रिय वीर हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। सबकी आँखें उसकी ओर थीं। उसने खड़े होकर कहा—गुरु महाराज, आपकी आज्ञा से एक वार क्यों, यदि संभव हो तो दस वार भी सिर देने को तैयार हूँ। यह कहकर वह आगे बढ़ा। गुरु साहब उसे अपने साथ भीतरी तंबू में, जिस पर पर्दा पड़ा हुआ था, ले गए और वहाँ जो पाँच बकरे बँधे हुए थे, उनमें से एक का सिर उन्होंने काट डाला। रक्त की धारा नाली में से बहती हुई बाहर सभा-मंडप में जा निकली और गुरु साहब उस शिष्य को भीतर बैठाकर रक्त रंजित नंगी तलवार लिए सभागृह में आ खड़े हुए। नाली में रक्त बहता हुआ और गुरु साहब को नंगी, खून से रँगी हुई, तलवार लिए देखकर उपस्थित जन-मंडली स्तंभित और भय-भीत हुई तथा सबको भाई दयासिंह के मारे जाने का निश्चय हो गया। बहुतों के चेहरे पर हवा-इयाँ उड़ने लगीं। कितने ही धीरे से खिसकने लगे। गुरु साहब ने सब लक्ष्य किया, पर पुनः पहले ही तरह उच्च और गंभीर नाद से बोले—अब दूसरा वीर कौन है, जो धर्म्म के लिये सिर देगा ? यह सुनकर दिल्ली-निवासी धर्म्मसिंह नामक एक जाट हाथ जोड़कर खड़ा हुआ और बोला—गुरु महाराज ! मेरा सिर हाजिर है। गुरु साहब ने कहा—धन्य हो ! और

उसका भी हाथ पकड़ खेमे के भीतर ले जाकर उन्होंने उसे बैठा दिया और दूसरे बकरे का सिर काट डाला। वह वहाँ पर भाई दयासिंह को बैठा देख कुछ विस्मित हुआ। गुरु साहब ने कहा—"धीरज धरो, सब हाल थोड़ी देर में विदित हो जायगा।"

इसी प्रकार रक्त-रंजित तलवार लिए हुए गुरु साहब फिर बाहर आए और तलवार ऊँची करके बोले—"तीसरा वीर भक्त कौन है जो गुरु के लिये सिर देगा?" अबकी बार हिम्मतसिंह नाम का एक कहार हाथ जोड़कर खड़ा हुआ और बोला—"गुरु महराज, यद्यपि यह अधम शरीर धर्म्मार्थ बलि होने के योग्य तो नहीं है; पर यदि आप आज्ञा दें तो आपकी सेवा के लिये हाजिर है।" गुरु साहब ने कहा—"देव-सेवा में श्रद्धा और विश्वास देखा जाता है, जाति-पाति की पूँछ नहीं।" यह कहकर उसकी बाँह पकड़ वे उसे खेमे के भीतर ले गए और यथास्थान बैठाकर तीसरे बकरे का सिर उन्होंने काट डाला और वैसे ही नंगी तलवार लिये वे बाहर आ खड़े हुए। नाली से रक्त का प्रवाह बहा आ रहा था। उपस्थित जन-मडली स्तंभित और चकित सी बैठी थी। चौथी बार गुरु साहब ने ललकारा—"चौथा कौन सा धर्म्मवीर है?" एक छीपी (शूद्र, जो वस्त्र छापते हैं) जाति का कोहकमसिंह नामक पुरुष हाथ जोड़ और सिर नवा सामने आया। गुरु साहब उसे भी वैसे ही खेमे के भीतर ले गए और चौथे बकरे का सिर काटा गया। पाँचवीं बार जब कि गुरु साहब रक्त-स्नात नंगी तलवार लिए हुए बाहर आए तो भय से बहुत से शिष्य खिसक चुके थे; पर तो भी कौतुक और अंतिम दृश्य देखने की उत्कंठा के कारण बहुत से लोग बैठे थे। कहार और छीपी

जाति के पुरुषों की हिम्मत देखकर बड़े बड़े ब्राह्मण क्षत्रियों के सिर नीचे हो गए थे, चेहरा उतर गया था और वे ठंढी साँसें ले रहे थे। गुरु साहब ने एक आन भर में सब लक्ष्य कर लिया और वे फिर बाहर आकर बोले—"अब अंतिम बलि चढ़ाने की भी किसी में हिम्मत है?" अब की साहबसिंह नामक एक हज्जाम हाथ जोड़ खड़ा हुआ और बोला—"महाराज, क्या इस पतित पर ऐसी दया होगी कि इसका अधम शीश देव-सेवा में अर्पण हो?" गुरु साहब ने कहा—"नहीं; तुम्हारे ऐसे शूरों को पतित नहीं, पतित-पावन कहना चाहिए।" यह कह-कर उसे भी वे खेमे के भीतर ले गए और पाँचवें बकरे का सिर काट डाला गया तथा रक्त-स्रोत वेग से नाली की राह सभा-मंडप में आ निकला। उपस्थित जन-मंडली में से बहुतेरों ने समझा कि गुरु साहब अवश्य पागल हो गए हैं और नाना प्रकार की चिंता, भय और उद्वेग से पूर्ण होकर एक सकते की हालत में सब जहाँ के तहाँ बैठे रहे। किसी के मुँह में शब्द न था। गुरु साहब बाहर आकर बोले—"आप लोग तनिक धैर्य धरें। दुर्गा भवानी परम संतुष्ट हुई हैं और उनकी प्रसन्नता का खुलासा समाचार अभी आप लोगों को सुनाया जायगा।" यह कहकर वे खेमे के भीतर चले गए। वहाँ जाकर उन पाँचों शिष्यों को स्नान करवाया और सबको एक ही प्रकार का बहुमूल्य वस्त्र और कमर में तलवार-ढाल बँधवाई और आप राजसी बड़े रौनकदार वस्त्र धारण किए और अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित हो उन पाँचों शिष्यों को संग लिए सभा-मंडप में आ खड़े हुए। सभासदगण बड़े विस्मित हो आश्चर्य-सागर में गोते खाने लगे; क्योंकि बकरों के मारे जाने का हाल अब तक किसी को विदित न था। बहुतेरों को पछतावा भी हुआ कि हाय,

हमने गुरु की सेवा में सिर क्यों न दिया? जब सब लोग कुछ प्रकृतिस्थ हुए तो गुरु साहब ने सारा भेद नीचे लिखे व्याख्यान द्वारा यों वर्णन किया—"भाइयो! आप लोगों को यहाँ आने का कष्ट एक महोत्सव में सम्मिलित होने के लिये दिया था। पर इस कार्य्य को देखकर शायद आपमें से कइयों के चित्त में नाना प्रकार की भावनाएँ उठ रही होंगी और आप इसका कुल भेद जानना चाहते होंगे। मित्रो! सच्ची शक्ति आत्मिक बल है जिसका नमूना इन पाँच महापुरुषों ने आपको अभी प्रत्यक्ष दिखाया है। मैंने भीतर पाँच बकरे बाँध रखे थे और उन्हीं का सिर काटकर नाली में रक्त बहाया था, ताकि इस बात की परीक्षा लूँ कि निश्चय मृत्यु जानकर भी आप लोग गुरु के लिये सिर देने, प्राण अर्पण करने के लिये तैयार हैं या नहीं। सो बड़े आनंद की बात है कि एक के बाद दो, तीन, चार, पाँच शूर वीर इस परीक्षा के लिये उद्यत हुए और भली भाँति उत्तीर्ण भी हुए। मुझे विश्वास है कि आप लोगों में से अभी बहुत से और भी शूर वीर वर्त्तमान हैं जो माँगने पर अवश्य अपना सिर देने को राजी हो जाते। यह बड़े आनंद और गौरव की बात है। गुरु नानकदेवजी की परीक्षा में एक शिष्य अंगदजी उत्तीर्ण हुए थे; पर इस कठिन परीक्षा में पाँच वीर उत्तीर्ण हुए हैं। जैसे उन्होंने अपने बाद अंगदजी को अपने उद्देश्य का उत्तराधिकारी किया था, वैसे ही मैं भी आज इन पाँचों के सहित आप सब लोगों को अपने उद्देश्य का उत्तराधिकारी करूँगा; क्योंकि मुझे पूर्ण आशा है कि आप लोगों के द्वारा देश की और धर्म्म की रक्षा होगी। आप लोग धन्य हैं! और धन्य गुरु की सिक्खी है! धन्य गुरु की सिक्खी!" ये शब्द गुरु साहब ने तीन वार उच्चारण किए। यह कहकर

गुरु साहब ने उस रोज की सभा विसर्जित की और दूसरे दिन के लिये सबको यथासमय सभा में आने के लिये कहा।

दूसरे दिन संवत् १७५६ वैशाख कृष्ण प्रतिपदा के दिन प्रातःकाल ही सभा-मंडप रचा गया। नवीन वस्त्र और अस्त्र इत्यादि धारण करा गुरु साहब ने उन पाँचों शिष्यों को सभा के सम्मुख खड़ा किया और सतलज नदी में से एक गगरा जल मँगवा उसे एक लोहे की कड़ाही में डाला और उसमें बताशा छोड़ शरबत बनाया। जब शरबत बनकर तैयार हो गया तो परमात्मा की जो स्तुति गुरु नानकदेव तथा गुरु अमरदासजी ने उच्चारण की है तथा जो स्वयं गुरु साहब की भी रचना है, उसका गुरु साहब पाठ करने लगे। एक लोहे का फौलादी खड्ग उस पात्र में फेरते जाते और उस शब्द का उच्चारण करते जाते थे। तात्पर्य्य यह कि उसे मंत्र से पवित्र कर रहे थे। जब यह क्रिया समाप्त हुई तो गुरु साहब ने कहा—"भाइयो! फौलादी खड्ग के स्पर्श और परमात्मा की वाणी के प्रभाव से यह 'अमृत' तैयार हुआ है। इसे पीनेवाले शूर वीर और अमर अर्थात् देवताओं के सदृश पुरुषार्थी और बली होंगे।" यह कहकर उन पाँचों शिष्यों को पाँच पाँच चुल्लू पिलाया और पाँच बार उसी का उसकी आँखों और केशों पर छींटा मारा। फिर उसी कड़ाही में कड़ाहप्रसाद (हलुआ) बनवाकर उन पाँचों को भोजन कराया। पाँचों ने गुरु साहब के आज्ञानुसार उसी एक पात्र में बड़े प्रेमपूर्वक भोजन किया। जाति-पाति खान-पान की बाधा अपने शिष्यों में से उन्होंने यों एक झटके में दूर कर दी। तत्पश्चात् उन्हीं पाँच वाणी द्वारा उन पाँचों शिष्यों से 'अमृत' बनवा आप भी आचमन किया और सबको दिया।

जब शिष्यगण खा पी चुके तब उनसे "वाह गुरु का खालसा, वाह गुरु की फते" बड़े जोर से तीन बार यह शब्द उच्चारण करवाया जिसका तात्पर्य्य यह है कि "जहाँ वाह गुरु अर्थात् परमात्मा का खालसा अर्थात् खालिस (निर्म्मल) पंथ है, वहाँ अवश्य फतह अर्थात् जय है।"

'अमृत' पान करने के बाद आपने उच्चारण किया—"वाह ! वाह ! गुरु के गोविंद सिंह आपै गुरु आपै चेला और गुरु खालसा, खालसा चेला।" अर्थात् इन बातों से कोई यह न समझे कि मैं गुरु हूँ। जैसे सब लोग खालसा पंथ के चेले हैं, वैसे ही मैं भी हूँ। यह संस्कार सिक्खों में अब तक प्रचलित है और उपनयन संस्कार (जनेऊ) के स्थान में वे लोग इसी का प्रयोग करते हैं। जब यह क्रिया हो चुकी तो गुरु साहब ने पाँचों शिष्यों से निम्न-लिखित व्रत धारण करने की प्रतिज्ञा करवाई—

१—आज से गुरु के घर तुम्हारा नवीन जन्म हुआ है।

२—गुरु खालसा का रूप एक है; अतः आज से पटने तथा आनंदपुर को अपना जन्मस्थान समझो।

३—आप लोग आज से गुरु साहब के अपने पुत्रवत् हुए; इसलिये परस्पर सगे भाइयों की तरह आचार व्यवहार और प्रेमपूर्वक खान-पान किया करो।

४—झगड़ा कलह नहीं करना। जैसे राम-लक्ष्मण और भरत-शत्रुघ्न अथवा पंच पांडब परस्पर प्रीतिपूर्वक रहते थे, वैसे ही रहना।

५—आज से आप लोग सोढ़ी वंशीय क्षत्रिय हुए, इसीलिये घर में चींटी खटमल की तरह न मरकर "मैदान जंग" में युद्ध करके शूरों की तरह मरना आपका परम धर्म होगा।

६—सत्य श्री अकाल पुरुष, गुरु ग्रंथ साहब और गुरु

खालसा इन तीनों की उपासना करना और इनका सत्कार करना तथा संसार में किसी के आगे सिर न झुकाना।

७—शरीर के केश न मुँड़वाना तथा जाँघिया, कड़ा, कंघा और कृपाण सर्वदा धारण करना। इन वस्तुओं को आमरण शरीर से कभी अलग न करना।

८—"सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्"—सर्वदा सत्य, दृढ़ और मधुर स्वर से बोलना। मिथ्या नहीं बोलना।

९—काम, क्रोध, मोह, लोभ और अभिमान का त्याग करना। पर-स्त्री माता के समान है। उस पर कुदृष्टि नहीं डालना; क्योंकि भोग का सुख क्षणिक है। उसके लिये बल-वीर्य्य गँवा देना बुद्धिमानी का काम नहीं है। यदि किसी दुर्बल ने अपमान कर दिया तो उसे निर्बल और आर्त जान क्रोध नहीं करना। क्षमा करना ही वीरों का धर्म्म है। पर हाँ, सबल को अवश्य दंड देना। जगत् के पदार्थ एक से नहीं रहते। उसके किसी एक रूप में, जो कि क्षण भर में बदल जायगा, मन फँसाना उचित नहीं। मोह का सर्वथा त्याग करना उचित है। अपने परिश्रम और पुरुषार्थ से लभ्य जो पदार्थ है उसी में संतुष्ट रहकर, अकारण दूसरे की वस्तु पाने की इच्छा नहीं करना; तथा आगे न जाने कितने ज्ञानी, मानी, शूर, वीर और धुरंधरों को काल ने एक फूँक में स्वाहा कर दिया; इसलिये कभी अहंकार न करना।

१०—मीणे, मसंदिए, धीरमल्लिए और रामराइए ये चारों गुरु-घराने के विरोधी हैं। इनसे सावधान रहना।

११—आज से आप असली शूर वीर क्षत्रिय हुए; इसलिये नड़ीमार (हुक्का पीनेवाले) और कुड़ीमार (कन्या मारने-वाले) तथा चिड़ीमार (बहेलिए) और सिरमुंडा (संन्यासी)

इन लोगों की संगति कभी मत करना।

१२—स्त्रियों के सुहाग का वेष रक्त वर्ण का है। आप शूर वीर जन खालसा पंथ में इसका प्रचार न करें।

१३—जब आप इस संस्कार के बाद सिंह हुए हैं, तो आगे से आधा नाम उच्चारण कर अप्रतिष्ठापूर्वक आपस में बुलाना नहीं चाहिए। जब बुलाइए, तब अमुक सिंह ऐसा संबोधन कर बुलाना उचित है।

१४—सिवा स्नान के और किसी समय में नंगे सिर मत रहो।

१५—जूआ पासा मत खेलना।

१६—शरीर के किसी भाग का केश नहीं मुँड़वाना तथा दान ध्यान इत्यादि क्रिया नहीं छोड़ना।

१७—यवनी से मैथुन करना, म्लेच्छों का उच्छिष्ट भोजन, गाँजा तमाकू चरस इत्यादि पीना, केश मुँड़वा देना और अखाद्य भोजन इन पाँचों को महापातक समझो। ऐसा करनेवालों को 'पंथ खालसा' से बाहर कर देना चाहिए। यदि अलग होने के बाद वे पश्चात्ताप कर क्षमा के प्रार्थी हों तो वे पुनः अमृत पान कराके तीन मास का उपार्जित धन दंड में देने, दूसरी बार अपराध करने पर छः मास की कमाई का धन और तीसरी बार में एक वर्ष का उपार्जित धन देने से मिलाए जा सकेंगे। यदि वे गरीब हों और कुछ भी अर्थ-दंड देने की क्षमता न रखते हों तो उन्हें उतने ही काल किसी गुरु-स्थान की सेवा करनी होगी। यदि तीन बार शुद्ध होकर फिर भी कोई पतित हो तो उस नराधम का सर्वथा परित्याग कर देना चाहिए।

१८—पंथ खालसा में कोई पुरुष घोड़ा चढ़ने, तलवार चलाने तथा मल्ल-युद्ध की विद्या से शून्य न हो।

१९—दुखियों के दुःख दूर करने तथा धर्म्म और देश की रक्षा के अर्थ ही पंथ खालसा के प्रत्येक मनुष्य का जन्म हुआ है, ऐसा समझना चाहिए।

२०—मिथ्या आडंबर दिखाना, कपट छल, छिद्र झूठी निंदा-स्तुति करना करवाना, इन बातों से शूर वीर खालसा जाति को अवश्य बचना चाहिए।

२१—यथासाध्य भजन, साधन और गुरु-वाणी द्वारा अकाल पुरुष की उपासना करना तथा धर्मपूर्वक द्रव्योपार्जन कर संत महात्मा, अतिथि की यथोपयुक्त सेवा करना यह आप लोगों का नित्य-धर्म्म होना चाहिए।

इन इक्कीस शिक्षाओं को स्पष्ट शब्दों में सुनाकर गुरु साहब ने भाई दयासिंह द्वारा बनवाया हुआ अमृत चखा और उनके मुख से इन उपदेशों की पुनः आवृत्ति कराके आप सुनी। जब यह क्रिया हो चुकी तो उन्होंने उन पाँचों से कहा—"आप लोग मेरे शिष्य नहीं हैं, वरन् मित्र सखा हैं। मनुष्य मनुष्य में गुरु-शिष्य का भेद नहीं हो सकता। 'सृष्टि के आरंभ से वही अकाल पुरुष प्राणिमात्र का गुरु है', ऐसा ही समझ जिसको इन शिक्षाओं का उपदेश करना, उसको अपना शिष्य न समझकर बराबरवाला भाई समझना और वैसा ही संबोधन करना।" जब इन पाँचों का संस्कार हो चुका तो और भी चालीस शिष्यों ने उसी काल में संस्कृत होने की इच्छा प्रकट की। गुरु साहब ने बड़े आदर से उन लोगों को भी उसी प्रकार अमृत पिला सुसंस्कृत किया। इन चालीसों का नाम "चालीस मुक्ते (मुक्त)" रखा। फिर तो नित्य सैकड़ों शिष्य आने और पंथ खालसा के संस्कृत हो तथा अमृत पान कर गुरु के सिक्ख बनने लगे।

जो आता वह संस्कृत हो दृढ़ता, वीरता और धर्म्मपरायणता का अवतार बन जाता था। थोड़े ही दिनों में सहस्रों नर-नारी खालसा पंथ में शामिल हुए और गुरु साहब का बल दिन दूना रात चौगुना बढ़ने लगा।

इसके बाद एक दिन गुरु साहब ने इस विचार से, कि यदि आस-पास के पहाड़ी राजाओं का बल एकत्र होकर देश-रक्षा में तत्पर हो जाय, तो अति उत्तम होगा, एक सभा में राजाओं को और अपने शिष्यवर्गों को भी निमंत्रित कर कहा—"भाइयो, हम क्षत्रिय हैं। हमारा धर्म्म है तीनों वर्णों और धर्म्म की, देश की रक्षा करना। अपने धर्म्म को त्याग हम ऐसे गिर गए कि और की रक्षा तो क्या करेंगे, अपनी रक्षा भी नहीं कर सकते। हमारे सामने मुसलमानगण हम पर अत्याचार करते हैं, गो-घात करते हैं और हमारी कन्याओं पर बलात्कार कर धर्म्म-भ्रष्ट करते हैं; पर हमारे कानों पर जू नहीं रेंगती। हा! शोक!! हम ऐसे गिर गए!!! भारत भूमि हमारी माता है; पर यवनगण बलात्कार कर रहे हैं। शोक! महाशोक!! हमारे सामने माता पर बलात्कार हो और हम चुपचाप देखते रहें! क्या आपमें बल नहीं? क्या साहस नहीं? क्या आप भीम अर्जुन को संतान नहीं हैं? फिर क्यों आप ऐसे कायर बन रहे हैं? यदि उन्हीं महापुरुषों को संतान हैं तो कहाँ गया बल? कहाँ गया वह तेज? कहाँ गया वह आर्यों का पवित्र रक्त? अपमान सहकर जीने की अपेक्षा सौ सौ बार मरना अच्छा है। क्या आपको यह अच्छा लगता है कि आप लोगों की ऐसी दुर्दशा होती रहे और आप चुपचाप देखते रहें? देखो भाइयो, शास्त्र में कहा है कि "तृण यद्यपि एक बिलकुल सामान्य वस्तु है; पर वही इकट्ठा

होकर जब मोटे रस्से के रूप में हो जाता है तो बड़े से बड़ा मतवाला हाथी भी उससे बाँध दिया जाता है।" जब तृण इकट्ठा होकर इतना सामर्थ्यवान् हो जाता है, तो आप लोग यदि अपने अपने तुच्छ स्वार्थ को त्यागकर एकत्र हों तो क्या इस मुगल साम्राज्य को उसके किए का-फल नहीं चखा सकते ? अवश्य चखा सकते हैं। हिम्मत चाहिए। धर्म्म का उत्साह चाहिए। गुरु हरगोविंदजी का बल आप किसी एक से अधिक न था। पर उन्होंने बादशाह शाहजहाँ के दाँत खट्टे कर दिए थे। गुरु अर्जुनजी ने मुसलमानों के अत्याचार से दुःखित हो प्राण दिए। हमारे पूज्य पिता गुरु तेगबहादुरजी ने बिना हिचके फौलाद के नीचे सिर रख दिया; पर धर्म्म नहीं छोड़ा। लोगों ने क्या किया ? आप ही के हिंदू धर्म्म का एक धर्म-शिक्षक ऐसी बेदर्दी से कत्ल किया गया, पर आपने चूँ तक नहीं की। यह क्या आप लोगों के योग्य बात थी ? जिन यवनों का स्पर्श करना आप धर्म के विरुद्ध है, उनके सब अत्याचार सहते हैं और उनकी गुलामी करते हुए तनिक नहीं लजाते ? ऐसे जीने से चुल्लू भर पानी में डूब मरना अच्छा है। जो यवन चाहे आपके सुंदर नन्हें बच्चे को बलपूर्वक ले जा सकता है; पर आप चूँ तक नहीं कर सकते। आपके धर्म-स्थान देवालय तोड़-ताड़कर उजाड़ वीरान कर दिए गए; पर आपसे कुछ करते न बन पड़ा। भाइयो, स्मरण रखना यह हिंदू जाति (आर्य्य जाति) वही है जिसने किसी समय में लंका के रावण ऐसे प्रबल प्रतापी अत्याचारी का नाश किया था, जिसने शाहंशाह सिकंदर और मुहम्मद गोरी को नाकों चने चबवाए थे, जिसने राजसूय यज्ञ में पाताल, चीन और हरिवर्ष देश के राजाओं से टहल करवाई

थी, काबुल कंधार जिसके हाथ का खिलौना था। उसी हिंदू जाति की अ आप लोगों ने यह दशा कर रखी है—हाँ आप ही लोगों ने कर रखी है! कहाँ हैं वे आर्य्य ललनाएँ, वीर बालाएँ, जिन्होंने शूर वीरों को जन्म दिया था। क्या उनकी वंश-परंपरा लुप्त हो गई ? नहीं, लुप्त नहीं हुई। आप हम कुल हिंदू जाति के बीच वह बीज—वही पवित्र आर्य्य रक्त—विद्यमान है। पर उचित जल-वायु अर्थात् उचित शिक्षा और उपदेश के न मिलने के कारण यह बीज सूख गया है, रक्त फीका पड़ गया है। हमारा कर्तव्य होना चाहिए कि उस बीज को उत्साह और उपदेश-रूपी वारि से सींचें। तब देखोगे कि उसमें से साहस और वीरता-रूपी फल प्रकट होते हैं या नहीं। भारतवर्ष का प्रचंड मार्तंड अस्त होने लगा है। उसका पुनरुदय आपही लोगों के हाथ है। परमात्मा न्यायकारी है। जो जैसा करता है, वैसा ही पाता है। आपको यदि सुख पाना है, प्रतापी होना है तो आज से प्रतिज्ञा कीजिए कि हम पंथ खालसा के नाम पर जो कि धर्म्म के उद्धार और देश की रक्षा के लिये खड़ा किया गया है, एक संग मिलकर प्राण देने से कभी पीछे न हटेंगे। संसार में आकर एक दिवस मरना तो अवश्य ही है। अमर होकर तो कोई आया ही नहीं। फिर यदि किसी उत्तम कार्य्य में यह नश्वर शरीर काम आवे तो इससे बढ़कर और कौन सी अच्छी बात है। भाइयो, सोचो और विचारो, दैव भी उसी पर अनुग्रह करता है जो पुरुषसिंह हो। आप सोचते होंगे कि कार्य्य-सिद्धि हो या न हो, फल की आशा अभी से करते रहें। पर संसार में सुफल उसी का कार्य्य होता है जो सिद्धि और असिद्धि को समान जानकर सदा अपने कर्त्तव्य में तत्पर रहता है। इस

प्रकार उत्साहपूर्ण वचनों में गुरु साहब ने एक बड़ा प्रभाव-शाली उपदेश दिया, जिसका प्रभाव जनमंडली पर बड़ा अच्छा पड़ा। सहस्रों जन-साधारण अमृत चख गुरु साहब के शिष्य हुए। पर राजाओं की बात निराली थी।

ऐसा प्रायः देखने में आया है और इतिहास भी इस बात की साक्षी देता है कि जब जब किसी नवीन शिक्षा या नवीन उत्साह से देशोद्धार या धर्म्मोद्धार का कार्य्य किसी ने उठाया है, तो उसे साधारण मनुष्यों ही की सहायता मिली है। धनी-मानी रईस जमींदार राजे-महाराजे प्रायः इस कार्य्य से विमुख रहे हैं। और कहीं यदि तत्कालीन राजशासन के विरुद्ध कभी कोई बात हुई है, तो उन्होंने सहायता के बदले उलटे विरोध किया है; क्योंकि उन्हें खटका इस बात का रहता है कि कहीं इस मार्ग पर चलकर हम अपने धन-मान, पद-मर्य्यादा से हाथ न धो बैठें। वर्तमान काल में केवल जापान ही का ऐसा दृष्टांत है जहाँ रईस और राजे-महाराजों ने देश के छित-राए हुए बल को एकत्र कर साम्राज्य स्थापन करने के लिये अपने अपने तुच्छ अधिकारों को त्यागा है और इसका अमृत-रूपी फल भी हाथों हाथ पाया है, पर भारत के भाग्य तो बहुत दिनों से मंद चले आते हैं। यहाँ के राजे महाराजे गुरु गोविंदसिंहजी की सलाह क्यों मानने लगे थे? फिर सुख-पूर्वक "कंचन पलँग बिछौना गुलगुल तकिया लेफ दुलैया और मिस्री दूध मलैया" का मजा जो जाता रहता। इन पहाड़ी राजाओं ने परस्पर मिलकर एक कमेटी की और यह निश्चय किया कि आज छः सौ वर्ष से मुसलमान लोग हम पर राज्य कर रहे हैं। उनसे विरोध करना युक्तिसंगत नहीं है। कहीं शाहंशाह औरंगजेब को खबर लग जायगी तो न

जाने हम लोगों की क्या दुर्दशा होगी। गुरु गोविंदसिंह के पिता को बादशाह ने कत्ल करवा डाला है, इसीलिये हम लोगों को उभाड़कर ये अपना मतलब सिद्ध किया चाहते हैं। सो हम लोगों को उनके चकमे में न आना चाहिए। और फिर अपनी सीमा के निकट एक साधारण धर्म्मोपदेशक को इतना बली और प्रतापी होने देना भी नीति के सर्वथा विरुद्ध है। इनसे विशेष सावधान रहना और जिसमें यह सिर न उठाने पावें इसी का प्रबंध करना चाहिए। धन्य ईर्ष्या, तेरी महिमा की बलिहारी है! तैने ही महाभारत करा भारत को गारत कर डाला। तेरे ही कारण मुहम्मद गोरी के चरण भारत-भूमि में आए और तैने ही महाराष्ट्र साम्राज्य और सिक्ख-राज्य को चौपट किया। अस्तु; इन राजाओं ने गुरु साहब का कहला भेजा कि मुसलमान बादशाह लोग आज छः सौ वर्ष से हम लोगों पर राज्य कर रहे हैं। हम सामान्य राजा लोग उनसे वैर करके अपनी दुर्दशा नहीं कराना चाहते। आपको भी सावधानी से सब काम करना चाहिए। गुरु साहब उन लोगों का तात्पर्य्य समझ गए और उन्होंने कहला भेजा कि मेरी मनशा तो यही थी कि आप सब लाग सामान्य से असामान्य चक्रवर्ती हो जायँ। पर आप यदि इसी दशा में प्रसन्न हैं तो खुशी से रहिए। मेरी खबरदारी तो अकाल पुरुष करता है। आप निश्चिंत रहें। यह कहकर गुरु साहब ने उनके दूत को विदा किया और अपने शिष्यों को आज्ञा दी—"अपने व्रत पर दृढ़ रहकर निडर रहो। जब रसद-पानि-वारे की आवश्यकता हो, तत्काल सीमा के पहाड़ी राजाओं की रियासतों में से बेखटके लूट लाओ। डरने की कोई बात नहीं है।" सिक्ख लोगों को जब रसद या घोड़े के दाना-घास या चारे की आवश्यकता

होती तो वे उन्हीं पहाड़ी राजाओं की रियासतों से लूट लाते थे। यदि कभी राजाओं के सिपाहियों से कुछ संघर्ष भी होता तो वे इन नवीन धर्म्मोन्मत्त योद्धाओं के सामने कब टिक सकते थे! थोड़ी ही देर में मैदान छोड़ भाग जाते थे। इनका उत्साह और भी बढ़ने लगा और राजाओं की राजधानी तक ये लोग लूट-मार मचाने लगे। इस कारण से पहाड़ी राजा लोग, जो कि पहले से ही ईर्ष्या के कारण इनसे जलते थे, अब इनके पूरे शत्रु हो गए। पहाड़ी राजाओं से वैर होने का कारण स्पष्ट रूप से दूसरे अध्याय में लिखा जायगा। इन्हीं दिनों जब कपालमोचन के मेले से प्रचार कर गुरु साहब घर वापस आए थे, तो देहरादून के बाबा रामराय के घर की एक स्त्री पंजाब कुँअर ने इनके पास सँदेशा भेजा—"महाराज! मेरा पति कुछ काल के लिये समाधिस्थ हुआ था। पर उसके कर्म्मचारियों ने मेरे निवारण करते रहने पर भी उसे मुर्दा कहकर बरजोरी जला डाला और माल-मता भी सब लूट लिया है। आपके सिवा इस समय और कौन है जो मेरी सहायता करे।" गुरु साहब उस विधवा का सँदेसा पाते ही पाँच सौ सवारों के साथ देहरादून जा पहुँचे और उन्होंने उन अत्याचार करने वाले कर्म्मचारियों का अंग भंग करके उन्हें खूब ही दंड दिया तथा बाबा रामराय की जायदाद का कुल प्रबंध एक भद्र पुरुष के सपुर्द कर वे घर लौट आए। संवत् १७५२ विक्रमी में होली के मेले पर पोटोहार की संगत को आते हुए मार्ग में मुसलमानों ने लूट लिया था। उन्होंने आकर जब गुरु साहब को समाचार सुनाया तो गुरु साहब बोले—"तुम लोग अस्त्र-विद्या से हीन हो; इसलिये तुम्हारी यह दशा हुई। कोई हर्ज नहीं; आज से इस विद्या के सीखने

में दत्तचित्त हो जाओ।" ये दो छोटे दृष्टांत यहाँ पर यह दिखलाने के लिये दिए गए हैं कि गुरु गोविंदसिंहजी अनाथ विधवाओं की रक्षा में विलंब नहीं करते थे। वे अन्य पुरुषों का दूसरे का, विशेषकर अपने शिष्यों का दूसरे का, मुखापेक्षी होना पसंद नहीं करते थे। उन्हें स्वात्मावलंबन और अपने पर भरोसा करने की शिक्षा दिया चाहते थे, इसी कारण तत्काल इनकी गुरु साहब ने कुछ सहायता नहीं की।

आठवाँ अध्याय

बिलासपुर के राजा का गुरु साहब से द्वेष करना और उनके विरुद्ध दूसरे पहाड़ी राजाओं को भड़काना तथा गुरु साहब की लड़ाइयाँ

आप लोगों को स्मरण होगा कि आसाम के एक राजा ने गुरु साहब को एक पंचकला शस्त्र और एक अद्भुत हाथी भेंट किया था। यह हाथी सूँड़ में पकड़कर मशाल दिखाता, चँवर करता, तलवार चलाता, चीजें उठा लाता और जूता झाड़ देता था। श्वेत वर्ण का यह वारण बड़ा सुंदर और मदमस्त था। गुरु साहब प्रायः इस पर सवारी किया करते थे; और जो राजा इनके दर्शनों को आता उसको इस हाथी के अद्भुत गुण सब प्रत्यक्ष दिखाते थे। एक समय बिलासपुर का राजा भीमचंद इनके दर्शनार्थ आया और हाथी के अद्भुत खेल देख ऐसा मोहित हुआ कि गुरु साहब से उसने अपने लिये इसे माँगा। गुरु साहब ने कहा कि यह हाथी इसीलिये आसाम के राजा ने भेंट किया है कि इस पर गुरु की सवारी हो और यह हमारे शौक की चीज भी है; इसलिये मैं तुम्हें यह हाथी नहीं दे सकता। भीमचंद इस हाथी पर बड़ा लट्टू हो रहा था। उसने कई बार गुरु साहब से कहा; और अंत को उसने एक लाख अशरफी देना चाहा; पर गुरु साहब ने देने से साफ इनकार किया वह मन में बड़ा चिढ़ा और उसके अंदर द्वेषाग्नि भभक उठी; पर मौका न देख यथायोग्य शिष्टाचार के बाद वह घर वापस गया। कुछ दिन बाद

भीमचंद के पुत्र के विवाह का उत्सव आ पहुँचा । इस विवाह के लिये उसने गुरु साहब से हाथी मँगनी माँगा; पर मन में यही था कि एक बार हाथी घर आ जाने पर फिर वापस नहीं करेंगे । गुरु साहब यह छल ताड़ गए और उन्होंने हाथी मँगनी भेजना बिलकुल अस्वीकार किया। इस पर भी भीमचंद ने न माना और स्वयं गुरु साहब के पास जा उनसे निवेदन किया कि श्रीनगर के राजा फतहशाह की पुत्री से मेरे पुत्र का विवाह होना निश्चित हुआ है। आप कृपा कर इस समय यह हाथी अवश्य मँगनी दीजिए, जिससे बारात की शोभा होगी और आपकी कीर्ति फैलेगी। गुरु साहब ने उत्तर दिया कि इस हाथी पर गुरु साहब की सवारी होती है। यह और किसी संसारिक कार्य्य के योग्य नहीं है । आप क्षमा करें और बार बार इसका जिक्र न करें। राजा भीमचंद कुछ दिनों तक गुरु साहब के पास टिका रहा। गुरु साहब ने बड़ी खातिरदारी से इसे अपने पास रखा । सैर-शिकार को जब वे जाते, उसे संग ले जाते थे। शिकार खेलते समय उसने फिर एक बार हाथी की चर्चा छेड़ी; पर इस बार भी गुरु साहब से कोरा जवाब पा वह बड़ा असंतुष्ट हुआ और क्रोध से आँखें लाल कर बोला—"अच्छा यों नहीं देते तो बरजोरी तुमसे यह हाथी लिया जायगा। सावधान!" गुरु साहब ने कहा चाहे जो हो, समझा जायगा। अकाल पुरुष की मर्जी। राजा बोला कि केवल यही नहीं, तुमको हमारे इलाके में भी रहना दुश्वार हो जायगा। गुरु साहब ने पुनः केवल इतना ही कहा—"जो अकाल पुरुष की इच्छा।" उनके उत्तर से बहुत ही उदास और दुःखित हो वह घर चला गया। भीमचंद का समधी श्रीनगर का राजा फतहशाह गुरु साहब का

मित्र था। गुरु साहब ने पाँच सौ सवारों के साथ उसके यहाँ टीका भेजा। जब भीमचंद ने गुरु साहब का टीका देखा तो बड़े क्रोध से बोला कि यदि आप गोविंदसिंह का टीका लेंगे, तो मैं बारात लौटा ले जाऊँगा और कदापि पुत्र का विवाह आपके यहाँ नहीं करूँगा। श्रीनगर का राजा बिचारा क्या करता! समधी के भय से उसने गुरु साहब का टीका फेर दिया। गुरु साहब के दीवान नंदचंद ने, जो टीका लेकर गया था, इसमें गुरु साहब का अपमान समझा और बहुत नाराज हो उसने सिपाहियों को आज्ञा दी—"विवाह और बारात का सब साज-सामान लूट लो।" फिर क्या था देखते देखते खालसा सिपाहियों ने लूट-पाट मार-पीट करना आरंभ कर दिया। मिठाई, मेवा, मिस्री के थाल झटापट पृथिवी पर पटके और पैर से रौंदे गए तथा सिपाहियों के भक्ष्य हुए। मिष्टान्न और पकवान, घृत दूध दही की कीच-मीच मच गई। किसी का सिर तोड़, किसी की बाँह मरोड़ विवाह की वेदी तोड़-ताड़ सिपाहियों ने अद्भुत धूम मचाई। बाराती अजब परेशान थे। "चौबेजी छब्बे होने चले थे, दूबे हो आए।" गए थे बारात में खुशी मनाने, उलटे सिर फूटा, हाथ टूटा, कपड़े फटे और दुर्दशा, अपमान, लांछन का ठिकाना न रहा। थोड़ी देर तक इन उजड्ड सिपाहियों ने ऐसी धूम मचाई कि बराती राजा लोग बड़े क्रुद्ध, दुःखित और लांछित हुए। यह सब उपद्रव कर नंदचंद गुरु साहब के पास लौट गया और उनसे सारा समाचार उसने कह सुनाया। गुरु साहब ने कहा—"बारात और शुभ कार्य्य में यों विघ्न डालकर तुमने अच्छा नहीं किया। खैर, जो अकाल पुरुष की मर्जी" राजा भीमचंद तो आग बबूल हो रहा था उसने समवेत बराती राजाओं को इकट्ठा कर कहा—

"देखी आप लोगों ने इस परिंदे की धृष्टता ! यह ऐसा सिर चढ़ गया है कि इसके अदना अदना से कर्म्मचारी आ हम तिलकधारी राजाओं को ऐसी दुर्दशा करें और हम चुपचाप देखते रहें। दुष्ट को तनिक भी लज्जा नहीं आई। अब कल्याण इसी में है कि हम लोग आज ही सब कोई अपनी अपनी सेना सजकर गोविंदसिंह पर चढ़ाई कर दें और उसे धूल में मिलाकर उसकी बोटी बोटी कर तब पानी पीएँ।" सब लोगों ने सलाह कर दस हजार प्रबल सेना के साथ गुरु साहब पर चढ़ाई कर दी। गुरु साहब उस समय पाँवटा नामक ग्राम में थे। इन राजाओं को यह गुमान न था कि गुरु साहब का बल कहाँ तक बढ़ा हुआ है। हम सहज ही में मार लेंगे. इस विश्वास से मन के लड्डू खाते हुए आराम से वे चले आ रहे थे। राजा भीमचंद कहलूरिया, कृपालचँद कठौजिया, केशरीचंद जस्सोवालिया, सुखदयाल जसरुठिया, हरीचंद हिंडूरिया, पृथ्वीचंद उहालिया और राजा फतहशाह श्रीनगरिया, ये सब लोग इस सेना के सर्दार थे और बड़े उमंग से गुरु साहब के निवासस्थान पाँवटा नामक ग्राम पर चढ़े जा रहे थे। गुरु साहब को जब यह समाचार मिला उस समय उनके पास केवल दो सहस्र सेना थी। पर उन्होंने बेखटके सब सवारों को तैयार कर आज्ञा दी कि शत्रु यहाँ तक आने न पावें। फौरन् जाकर बीच ही में रोक दो। संवत १७४२ की वैशाख वदी १० को अपने दो हजार सवारों के साथ गुरु साहब आगे बढ़कर भिनगानी नामक ग्राम में जा डटे। जमसा और गिरी नदी के आमने-सामने दोनों सेनाओं का पड़ाव पड़ा। यद्यपि गुरु साहब की सेना कम थी और वह भी सब विश्वास योग्य नहीं थी, पर युद्ध में सब की एक बार परीक्षा

करना गुरु साहब को अभीष्ट था; इसलिये उन्होंने फौरन चढ़ाई करने की आज्ञा दे दी। मारू बाजा बजने और तलवार झनझन चलने लगी। किसी के पेट को चीरती, किसी की आँतें निकालती और किसी की खोपड़ी दो टूक करती हुई वीरों की तलवार रणचंडी वेश में नाचने लगी। सिपाही सिपाही से और सवार सवार से भिड़ पड़े! तलवारों की खचाखच से, लाशों से, मैदान पट गया। रक्त की नदी बह निकली। वीरगण लोथों पर पैर रखकर आगे बढ़ते और अपने करतब दिखाते थे और कायर भय से पीछे दबके जाते थे। खूब घमासान युद्ध हुआ; संध्या हो गई। देखते देखते भगवान अंशुमाली अपनी दिन की यात्रा पूरी कर मंदराचल की ओट में पधारे। हमारे वीरगणों ने भी थकित हो विश्राम किया। रात हो जाने के कारण लड़ाई बंद हुई। राजा लोग गुरु साहब की सेना की फुर्ती, वीरता और उत्साह देखकर हैरान थे। पर सबों ने सलाह की कि कल बड़ी सावधानी से धावा किया जाय और बिना मामला तै किए युद्ध बंद न हो। इधर तो यह सलाह हो रही थी, उधर गुरु साहब की सेना में जो पाँच सौ नागे सवार थे और हलुवा पूरी उड़ाकर गुरु साहब को हर दम जय मनाया करते थे, उन्होंने सोचा कि यह कहाँ की आफत गले पड़ी। कहाँ मजे में माल उड़ाते और चैन करते थे, अब प्राणों के लाले पड़ गए। अंधकार में एक एक दो दो करके वे सब कायर लोग खिसक गए। गुरु साहब को जब इस बात का पता लगा तो उन्होंने इसकी कुछ भी परवाह नहीं की। दूसरे दिवस की लड़ाई के लिये सबको सन्नद्ध रहने के लिये आज्ञा दी। पाठकों को स्मरण होगा कि सैयद बुद्धूशाह नाम के एक मुसलमान

फकीर की हिमायत से गुरु साहब ने पाँच पठानों को, जो बादशाही बागी थे और पाँच सौ सवारों के साथ घूमा करते थे, अपने यहाँ रख लिया था। इन दुष्टों ने सोचा कि गुरु साहब की सेना बहुत अल्प है, राजाओं से ये अवश्य हारेंगे। उस समय इनके माल-असबाब की लूट अवश्य हो होगी और हम लोगों को सब ठीक पता है ही। खूब हाथ रँगेंगे। इसलिये दूसरे दिन युद्ध आरभ होते ही ये पाँचों नराधम मय अपने पाँच सौ सवारों के शत्रु से जा मिले। गुरु साहब ने इन विश्वासघातकों का समाचार फौरन् सैयद बुद्धूशाह को भेज दिया और बाकी जो केवल एक सहस्र सेना बची थी, उसी के साथ वे मैदान में जा डटे। वे एक सहस्र सिपाही गुरु के सच्चे भक्त और युवा शूर वीर योद्धा थे। उनके दिल जरा न हिले। वे गुरु साहब के लिये अग्नि में कूदने या जल में डूबने को तत्क्षण तैयार थे। उन्हीं वीरों के साथ गुरु साहब ने दूसरे दिन शत्रुओं का सामना किया। इन थोड़े से बहादुरों ने अजीब समा दिखाया। इनकी तलवारें थीं कि बिजली थी। उन्मत्त वीर लोग दोनों हाथों से खचाखच तलवार चला रहे थे। हमारे गुरु साहब भी हाथी पर सवार तीरों की वर्षा कर रहे थे। शत्रु की सेना ने कई बार हल्ला करके मैदान मार लेना चाहा; पर वे जब जब आगे बढ़े, गहरी हानि के साथ पीछे हटा दिए गए। गुरु साहब के सौ के करीब सिपाही मारे जा चुके थे और कितने ही जख्मी होकर बेकाम भी हो गए थे। सवेरे से तीसरे पहर तक लड़ते लड़ते वे थक भी गए थे। अब वह समय करीब था कि अब की हल्ले में शत्रु मैदान मार ले। इसी बीच में गुरु साहब का मित्र सैयद बुद्धूशाह सहसा दो हजार सवारों के साथ गुरु की सहायता को आ

पहुँचा । सिक्ख सेना का उत्साह चौगुना हो गया । वही सिपाही, जो अब तक कठिनता से केवल शत्रुओं के वार बचा रहे थे, अब एक बार ही जी खोलकर दुश्मनों पर टूट पड़े। खूब जमकर तलवार चली। पहले दिन की तरह आज भी लोथ पर लोथ गिरने और रक्त की नाली बहने लगी। तीर और गोली की वर्षा के बीच बहादुर लोग मार करते हुए आगे बढ़े जाते थे। आज भी संध्या होने पर लड़ाई बंद हुई । तीसरे रोज फिर लड़ाई का मैदान गर्म हुआ। अब की गुरु साहब ने अपने चुने चुने सरदारों को आज्ञा दी कि चुन चुनकर आप लोग विपक्षी सरदारों को मारें। नहीं तो इतनी सेना को यों मारना कठिन होगा । तीसरे रोज गुरु साहब की ओर के सरदार नंदचंद, महंत कृपालदास, कृपालचंद, नंद-लाल शाही, माहरीचंद, भाई सेगू, भाई जीतमल्ल, गुलाब-राय, गंगाराम, दयाराम, भाई जीवन और लालचंद हलवाई इत्यादि वीर लोग मोरचे पर जा डटे और बड़ी मुस्तैदी से उन्होंने विपक्ष के सरदारों पर वार करना आरंभ किया। खूब जमकर तलवार चली । अंत को महंत कृपालदास के हाथ से वे ही दोनों पठान कालेखाँ और हयातखाँ, जो विश्वासघात कर शत्रुओं से जा मिले थे, मारे गए। तीसरा नजाबतखाँ लालचंद के हाथ से कत्ल हुआ । सरदारों की यह अवस्था देख राजा हरीचंद, जो तीरंदाजी में विख्यात था, गुरु साहब के सामने आ डटा और धनुष पर बाण चढ़ा उसने गुरु साहब पर वार किया। गुरु साहब जो कि इस समय घोड़े पर सवार होकर युद्ध कर रहे थे, जब तक उसके वार को रोकें रोकें, तब तक वह तीर घोड़े के पार्श्व भाग में लगा और घोड़ा गिर गया। गुरुजी फौरन् लपककर

दूसरे घोड़े पर सवार हुए ही थे कि एक तीर सनसनाता हुआ उनके शरीर को स्पर्श कर चला गया। अब की गुरु साहब ने अपना शर संधाना और तानकर ऐसा बाण मारा कि वह राजा हरीचंद के तालू को भेद करता हुआ कंठ के पार हो गया और राजा साहब तत्क्षण घोड़े पर से गिरकर यमलोक को सिधारे। तत्काल ही गुरु साहब ने दूसरी बार कमान चढ़ा ऐसा तीर मारा कि राजा केसरीचंद और सुखदेवचंद सख्त घायल हो घोड़े का मुँह फिराकर भाग निकले। इन लोगों के मुख मोड़ते ही राजाओं की सारी सेना की हिम्मत टूट गई। सब लोग शत्रु को पीठ दिखाकर भाग निकले। गुरु साहब ने फौरन् पीछा करने की आज्ञा दी। इन निर्बुद्धि राजाओं ने भागते हुए पृष्ठ भाग की रक्षा का भी कुछ प्रबंध नहीं किया था। सिक्खों ने बहुतों को मारा और घायल किया तथा कई कोस तक वे सरगर्मी से उनका पीछा करते चले गए। अंत में गुरु साहब की आज्ञा पा वे लौट आए। शत्रु के खेमे का रसद-पानी, माल-असबाब बहुत कुछ सिक्खों के हाथ लगा। इस युद्ध में गुरु साहब की ओर के भी भाई सेगू और जीतमल्ल इत्यादि कई शूर वीर मारे गए और सैयद बुद्धूशाह का पुत्र भी इस युद्ध में काम आया; पर जय-पताका गुरु साहब ही के हाथ रही। बड़ी खुशी से विजय का डंका बजाते हुए गुरु साहब अपने ग्राम पाँवटा को लौट आए। जो पाँच सौ नागे युद्ध के आरंभ में भागे थे, उन्हीं में का एक महंत कृपालदास अपने पाँच शिष्यों के साथ सर्वदा गुरु साहब के साथ डटा रहा था और अपनी सारी जमात के छोड़ जाने पर भी उसने गुरु साहब का संग नहीं छोड़ा था और वह बड़ी बहादुरी से गुरु साहब की ओर से

लड़ा था। कई पठान सरदारों को उसने मारा था। उसको गुरु साहब ने बड़ी खातिरदारी की और अपनी आधी पगड़ी उसको समर्पण की। इनका स्थान हेहर नामक कसबे में अब तक विद्यमान है। सैयद बुद्धूशाह ने बड़े मौके पर सहायता की थी। गुरु साहब ने गले लगा आधी पगड़ी उसे भी प्रदान की और एक बहुमूल्य कश्मीरी दुशाला अपने हाथ से उढ़ा अपने हस्ताक्षरयुक्त एक पत्र उसे प्रदान किया। बुद्धूशाह के उत्तराधिकारियों के पास अब तक यह पत्र विद्यमान है। इन सब सरदारों को सिरोपाव दे गुरु साहब ने सब सिपाहियों को बुला बड़ी प्रशंसा की और सबको यथायोग्य पारितोषिक तथा सिरोपाव दे संतुष्ट किया। मृतकों की यथाशास्त्र क्रिया करवा कर उनकी विधवाओं और उनके अनाथ बच्चों के पालन का भार उन्होंने अपने ऊपर लिया। उन्होंने सभी तरह से यथायोग्य सबको संतुष्ट किया।

पाठकों को विदित होगा कि गुरु गोविंदसिंहजी पहले आनंदपुर में रहते थे। केवल नाहन के राजा मेदिनीप्रकाश के विशेष आग्रह करने पर वे उसी के इलाके में पाँवटा नामक ग्राम बसाकर वहीं रहने लगे थे। जब पहाड़ी राजाओं की लड़ाई से निपटकर गुरु साहब घर आए तो उनकी माताजी ने कहा कि बेटा, पहाड़ी राजाओं से तुम्हारा अब विरोध आरंभ हो गया है। यह स्थान सर्वथा सुरक्षित नहीं है। उचित यही है कि अपने पुराने निवासस्थान आनंदपुर को वापस चल-कर वहीं रहो। गुरु साहब ने माताजी की आज्ञा शिरोधार्य्य की और वे घर-बार स्त्री-पुत्र समेत अपने पुराने निवासस्थान आनंदपुर में आ विराजे। यहीं पर एक सिख खत्री ने अपनी कन्या सुंदरीजी का डोला गुरु साहब को अर्पण किया जिससे

इनका दूसरा विवाह मिती आषाढ़ बदी ७ संवत् १७४२ को बड़े समारोह से संपन्न हुआ। एक वर्ष बाद इसी के गर्भ से गुरु साहब को एक परम तेजस्वी धर्मवीर संतान उत्पन्न हुई, जिसका नाम गुरु साहब ने अजीतसिंह रखा। गृहस्थी के सुख में पड़कर इन्होंने अपना कर्तव्य नहीं बिसारा था। अब इन्हें रात दिन इस बात का खटका लगा रहता था कि न जाने कब कौन शत्रु सहसा चढ़ आवे। पर इससे वे चिंतित जरा भी नहीं थे। बड़े उत्साह और आनंद के साथ सैनिक बल बढ़ाने में दत्तचित्त थे। पहले की तरह दूर दूर से शिष्यगण गुरु साहब के गुणग्राम, आतुरों पर दया, दुष्टों को दंड और युद्ध में अद्भुत वीरता के समाचार सुन सुनकर इनके दर्शनों को आने लगे। फिर रुपए, अशरफी, जवाहिरात, अस्त्र शस्त्र, घोड़े, खच्चर और हाथी भेंट में अगणित आने लगे। गुरु साहब ने अबकी सुदृढ़ किले बनवाना आरंभ किया। लोहगढ़, फतहगढ़, फूलगढ़ और आनंदगढ़ नाम के चार किले थोड़े ही काल में बनकर तैयार हो गए जिनमें मौके मौके पर सब युद्ध के सामान सजाए गए। अब गुरु गोविंदसिंहजी ने बादशाही ठाट धारण किया और वे दुष्टों का दमन तथा शिष्टों का पालन करने लगे। अपने इलाके में जो दुष्ट चोर डाकू लुटेरे थे, सबको पकड़ पकड़कर उन्होंने ऐसा कड़ा दंड दिया कि सबके दम ढीले हो गए। बहुतों ने कुटिल मार्ग छोड़ सीधा मार्ग ग्रहण किया और खेती बारी कर अपना निर्वाह करना आरंभ किया। जो सीधे मार्ग पर न आए, उन्हें गुरु साहब ने ऐसा दबाया कि उन्हें इनका इलाका छोड़कर अन्यत्र चला जाना पड़ा। तात्पर्य यह कि इन्होंने सब प्रकार से अपने इर्द गिर्द की हिंदू प्रजा के दुःख-मोचन की

चेष्टा की जिससे बहुत से इनके प्रिय भक्त और शिष्य हो गए; और जो शिष्य नहीं भी हुए, वे भी गुरु साहब का राजावत् सम्मान करने और उनको अपना और हिंदू-धर्म्म का रक्षक समझने और मानने लगे। जब कभी कोई न्याय अन्याय और विवाद का विषय होता तो उसकी नालिश गुरु साहब के दरबार में आती और गुरु साहब धर्म्मपूर्वक न्याय करते जिससे सब लोग संतुष्ट थे। शिष्यों को योद्धा बनाने का कार्य्य सदा से ज्यों का त्यों जारी था। इसमें शिथिलता तनिक भी न थी। यह इन्हीं की शिक्षा का प्रताप था कि उन दिनों पद-दलित हिंदू जाति के हृदय में वीरता और उत्साह की तरंगें उठने लग गई थीं और युवक वीरगणों की भुजा युद्ध के लिए सर्वदा फड़कती रहती थी। गुरु साहब को संवत् १७४७ विक्रमी माघ सुदी ७ को सुंदरीजी के गर्भ से दूसरा पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम उन्होंने धीरसिंह रखा। गुरु गोविंदसिंहजी की उन्नति, युद्ध में जयलाभ, अद्भुत रण-निपुणता देखकर पहाड़ी राजा लोग चकित हो गए थे और मन ही मन इनसे भय मानने लग गए थे। तुलसीदासजी ने कहा है—"भय बिनु होय न प्रीति।" सो ये राजा लोग भयभीत हो अब गुरु साहब से मित्रता स्थापन करने की बात सोचने लगे और तदनुसार उन्होंने मित्रता का पैगाम इनके पास भेजा। गुरु साहब, जो कि अंतर से स्वदेशी राजाओं से विरोध करना कभी पसंद नहीं करते थे, इस बात से बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने बड़ी सरलता से राजा भीमचंद इत्यादि की मित्रता का संदेशा स्वीकार किया; क्योंकि उनकी आंतरिक अभिलाषा यही थी कि आपस की फूट न रहे जिसमें मुसलमानगण हम पर अत्याचार न कर सकें। गुरु साहब ने इन लोगों से

मित्रता कर ली; पर इन राजाओं के भीतरी दिल गुरु साहब की तरफ से साफ न थे। अवश्य ही गुरु साहब की हिमायत पा इन लोगों ने बादशाही सूबों को नियमित कर (मालगुजारी) इत्यादि देना बंद कर दिया; पर भीतर ही भीतर इस दाँव-घात में अवश्य लगे रहे कि मौका पाकर गुरु साहब को दवा दें। गुरु साहब को इसका गुमान भी न था और अपनी वीरता और उत्साह के आगे वे इस बात की कुछ परवाह भी नहीं करते थे। इन दिनों यह हाल हो गया कि गुरु साहब के इलाके से दूर दूर रहनेवाली हिंदू प्रजा भी बादशाही शासन की कुछ परवाह न कर इन्हीं को अपना राजा मानने लगी थी। इन्हीं दिनों शाहंशाह औरंगजेब बड़े जोर शोर से दक्षिण प्रांत में मराठों के साथ युद्ध कर रहा था। उसकी भ्रमपूर्ण नीति ने मुगल साम्राज्य की नींव में घुन लगा दिया था। दक्षिण की ओर वीरवर शिवाजी और राजपूताने में राजा राजसिंह ने इसका नाकों दम कर रखा था। इधर अब पंजाब की भी बारी आई। इधर भी औरंगजेब ने कुटिल दृष्टि फेरी और गुरु गोविंदसिंह से मुठभेड़ की सूचना हुई। दक्षिण में गोलकुंडे की लड़ाई से जब फुरसत मिली और पंजाब के समाचार विदित हुए कि पहाड़ी राजा लोगों ने गुरु गोविंदसिंह की हिमायत पा मालगुजारी देना बंद कर दिया है, तो विद्रोही पहाड़ी राजाओं को दमन करने और उनसे प्राप्य कर (मालगुजारी) वसूल करने के लिये उसने मियाँखाँ, अलफखाँ और जुलफिकारखाँ नामक सर्दारों को थोड़ी सी सेना के साथ भेजा। सर्दार मियाँखाँ ने जंबू की ओर पयान किया। और इधर अलफखाँ और जुलफिकारखाँ को रवाना किया। इन दोनों ने नाहन, कहलूर, नाला-

गढ़ और चंबा के राजाओं पर चढ़ाई कर दी और उनको ऐसा दबाया कि वे लोग 'त्राही त्राही' करने लगे। दो पहाड़ी राजा, कृपालचंद कजौठिया और दयालचंद, मुसलमान सर्दारों के लिये भेंट लेकर आगे से मिले और अपने भाइयों की दुर्दशा कराने में उनके सहायक बने। क्यों न हो? यह तो भारतवर्ष का सनातन धर्म्म है। फिर यहाँ इसका व्यतिक्रम क्यों होता? घर के भेदी को सहायता पा पहाड़ी राजाओं को इन मुगलों ने तहस-नहस करना आरंभ किया। चारों ओर हिंदुओं पर अत्याचार और लूट-खसोट होने लगी। इन छोटे छोटे राजाओं पर मानों वज्रपात हुआ। ऐसी कठिन अवस्था में उन्हें उसी सामान्य धर्मोपदेशक गुरु गोविंदसिंह की याद आई। पाँच हजार रुपया भेंट का लेकर रोते गिड़गिड़ाते ये लोग गुरु साहब की शरण में आए और बोले कि हे दयालु, इस समय आपके सिवा हमारा कोई नहीं है। आप इस टेढ़े समय पर सहायता न कीजियेगा तो हम लोगों का सर्व-नाश हो जायगा। गुरु साहब ने इन लोगों को धैर्य्य दिया और पाँच सौ सिक्ख सवार इनकी सहायता के लिये इनके साथ कर दिए। दीवान नंदचंद, मोहरीचंद, और कृपालचंद भी साथ थे। यह सेना यवनों के रक्त की प्यासी थी। बड़े जोर से शत्रुओं पर जा टूटी और उसने ऐसी मार-काट की कि मुसलमानों के पैर उखड़ गए और वे भाग निकले। सिक्ख सवारों ने कुछ दूर तक पीछा किया; पर इसी बीच हनगड़ तथा हरिपुर के राजा मुसलमानी सेना से आ मिले और इनकी सेना की सहायता पा मुगल फिर मुड़े और उन्होंने थके हुए सिक्ख सवारों पर हमला किया। अबकी बार राजा दयालचंद हाथ जोड़े हुए स्वयं गुरु साहब के पास दौड़ा गया और उन्हें

अपने साथ लिवा लाया। गुरु साहब के आते ही लड़ाई का मैदान फिर गर्म हुआ। शत्रुओं की सेना अधिक देख जब राजा दयालचंद घबराता तब गुरु साहब उसे तसल्ली देते और युद्ध में डटे रहने के लिये उत्साहित करते थे। गुरुजी को नायक पा थकी हुई सिक्ख सेना के दिल दूने हो गए और उसने नवीन उत्साह से "श्रीवाह गुरु की फतह" उच्चारण कर शत्रुओं पर धावा बोल दिया। इधर गुरु गोविंदसिंहजी ने भी, जो तीरंदाजी में अपना प्रतिद्वंद्वी नहीं रखते थे, धनुष चढ़ा ताक ताक ऐसे बाण मारे कि शत्रुओं के छक्के छूट गए। तीर और गोली की वर्षा तथा बरछे, संगीन और तलवारों की मार से मुगल सेना घबरा उठी। उन्होंने समझा था कि सहज सी लड़ाई के बाद पहाड़ी राजा लोग गिड़गिड़ाते हुए भेंट लेकर उपस्थित होंगे। सो यह अन-होनी बात देख उसके होश उड़ गए। परास्त करना तो दूर रहा, उलटे सिक्खों से पीछा छुड़ाना कठिन हो गया। गुरु गोविंदसिंहजी की अध्यक्षता में बार बार सिक्ख लोग बड़ी प्रबलता से आक्रमण कर रहे थे और मुगल लोग क्षीण क्षीणतर होते जाते थे। एक एक सिक्ख की तलवार दस दस मनुष्यों को यमलोक भेज रही थी। अंत को परिणाम यह हुआ कि जब मुगलों ने देखा कि अब अधिक ठहरने में भागकर बचना भी कठिन होगा तब वे एकाएक पीछे फिरकर भाग निकले। गुरु साहब ने पीछा नहीं किया क्योंकि इनके सिपाही बहुत थक गए थे और घायल भी हो गए थे। कई नामी नामी सर्दार, मय राजा दयालचंद के, मारे भी गए थे; पर बादशाही सेना की भी बहुत हानि हुई थी। सैकड़ों मृत सिपाहियों को मैदान में छोड़ ये लोग भाग निकले थे। कितने ही

अर्धमृत और घायल भी हुए थे। तात्पर्य्य यह कि मुगलों को ऐसी बेढब तरह से हार खाने का कभी गुमान न था। इस सबका कारण गुरु गोविंदसिंह हैं, यह भी मुगलों को विदित हो गया।

गुरु साहब युद्ध में विजय पा, आलसौन ग्राम को बर्बाद करते और लूटते हुए, अपने निवासस्थान आनंदपुर को लौट आए। इसी ग्राम से मुगलों ने चढ़ाई की थी और अब भागकर वे लाहोर की ओर चले गए थे। बादशाही सूबेदार दिलावरखाँ ने, जो कि लाहोर में था, जब इस हार की खबर सुनी तो वह बहुत ही झुँझलाया तथा संवत १७४५ के भादों महीने में नवीन सेना लेकर पहाड़ी राजाओं पर चढ़ आया। गुरु गोविंदसिंह का पहाड़ी राजाओं की ओर से युद्ध करने का समाचार भी वह पा चुका था; इसलिये पुत्र रुस्तमखाँ को एक प्रबल सेना के साथ उसने इधर भी भेज दिया। उसने मारोमार धावा करते हुए एकदम गुरु साहब पर चढ़ाई कर दी। गुरु साहब भी तैयार थे। अपनी सेना के साथ मैदान में आ डटे। दिन भर खूब जोर-शोर से लड़ाई हुई। बड़े बड़े मुगल वीरों को गुरुजी के तीरों ने यमलोक भेज दिया। बहुत कुछ जोर मारने पर भी जब शाम तक रुस्तमखाँ कुछ न कर सका तो अँधेरा हो जाने के कारण उसने लड़ाई बन्द कर देने की आज्ञा दी। दिन भर के थके-माँदे सिपाहियों ने हाथ-मुँह धोया और खा पीकर विश्राम किया। गुरु साहब की सेना और मुगलों के बीच एक छोटी सी पहाड़ी नदी बहती थी। गुरु साहब की सेना नदी के किनारे कुछ ऊँचे पर और मुगल लोग शत्रुओं के सामने नदी के ठीक नीचे जल के साथ ही लगे हुए विश्राम कर रहे थे। रात को सब लोग नींद में

बेहोश, बेखटके आराम कर रहे थे। सेना के पहरेवाले तक कंधे पर बंदूक रखे घुटने पर सिर झुकाकर ऊँघ रहे थे। इसी समय में वह छोटी सी पहाड़ी नदी एकाएक मुगलों की तरफ इस तेजी से बढ़ी और ऐसे जोर का प्रवाह आया कि जब तक लोग जागकर देखें कि क्या हुआ है, सारी मुगल सेना अथाह जल में डूबकर बहने लगी। हाथी, घोड़े, अस्त्र, तंबू-खेमे, कनात सहसा सब पानी पर तैरते नजर आए। एक तो अँधेरी रात, तिस पर एकाएक इस आपत्ति के आ जाने से मुगलों के होश-हवास कुछ भी ठिकाने न रहे। सारी सेना बहकर कहाँ चली गई, कुछ पता भी न लगा। सिक्ख लोगों ने सवेरे उठकर जब देखा तो नदी बड़े भयंकर वेग से गरजती हुई वह रही थी और शत्रुओं का कहीं पता भी न था। सब बड़े चकित और आनंदित हुए और सबने अकाल पुरुष को बार बार धन्यवाद दिया तथा उसी दिन से वे नाले को हिमायती नाले के नाम से पुकारने लगे; क्योंकि उसने सिक्खों की हिमायत कर शत्रुओं को भगा दिया था।

रुस्तमखाँ ज्यों त्यों कर सवेरा होते होते नदी से निकलकर, राह में जो गाँव पड़ते थे उन्हें लूटता-पाटता, अपना मुँह काला कर पीछे लौट गया। दिलावरखाँ ने जब अपने पुत्र की दशा सुनी तो वह बहुत नाराज हुआ और दो सहस्र नवीन सेना देकर गुलाम हसनखाँ को फिर रुस्तमखाँ के साथ गुरु गोविंदसिंह पर चढ़ाई करने के लिये उसने भेजा। इसने आते ही पहले पहाड़ी राजाओं की खबर लेना आरंभ किया और थोड़े ही दिनों में राजा मंडो और काहनगढ़ को पराजित कर और बाकी मालगुजारी वसूल कर वह कहलूर और गुलेर के राजा की ओर रवाना हुआ। अब तो गुलेर के

राजा गोपालसिंह को गुरु गोविंदसिंह की याद आई और उसने हाथ जोड़ गुरु साहब से सहायता की प्रार्थना की। गुरु साहब ने केवल तीन सौ सवार भाई संगीता के साथ उसके सहायतार्थ भेज दिए। सिक्खों की सहायता पा राजा गोपालसिंह गुलेरी खूब जी खोलकर लड़ा। जब तीन दिन तक घोर युद्ध करने पर भी रुस्तम खाँ की कुछ न चली और कई मुख्य मुख्य सर्दार और करीब चार सौ के सिपाही मारे गए, तो उसके होश-हवास गुम हो गए और मारे भय के वह पीछा दिखा भाग निकला। अब तो राजा गोपालसिंह बड़ा प्रसन्न हुआ और बहुत नगद जवाहिरात और तोहफा लेकर गुरु साहब की भेंट को आया और उसने बड़ी नम्रता से कृतज्ञता प्रकट की। पर दिलावर को चैन कब था? उसने पुनः दो तीन बड़े बड़े मुग़ल सरदारों के साथ संवत् १७४५ विक्रमी में चढ़ाई की। बहलात नामक ग्राम के समीप फिर भी एक भारी लड़ाई हुई; पर उसमें भी जीत सिक्खों की हुई और रुस्तमखाँ को भागना पड़ा और अब की बार भी कई नामी शूरवीर सर्दार काम आए। मुगल बड़े परेशान हुए और बार बार की हार से झुँझलाए तथा दिलावरखाँ ने सारा समाचार बादशाह औरंगजेब को लिख भेजा। शाहंशाह बहुत नाराज हुआ। उसने एक बड़ी सेना के साथ शाहजादा मुअज्जम को पंजाब के विद्रोहियों को दमन करने के लिये भेज दिया। इसके आते ही पहाड़ी राजाओं में हलचल मच गई। सारे पहाड़ी राजाओं के छक्के छूट गए और मुँह पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। शाहजादा आप तो लाहौर की ओर चला गया और उसने अपने एक सर्दार मिरजा बेग दसहजारी को पहाड़ी राजाओं की ओर रवाना किया। जब अकेला वह

विशेष प्रभाव न डाल सका तो तीन-चार सर्दार उसकी सहायता के लिये और रवाना किए गए। इन्होंने आते ही पहाड़ी राजाओं की बड़ी दुर्दशा की। इनका घर-बार माल-खजाना सब कुछ लूट लिया, मकान और किले बर्बाद और नेस्तनाबूद कर दिए तथा कइयों को दाढ़ी-मूछ मुड़वा गधे पर सवार करा गश्त करवाया। मारे भय के सब जहाँ के तहाँ दबक गए। गुरु गोविंदसिंह पर भी इन पहाड़ी राजाओं की सहायता करने का अपवाद था। उनकी तरफ भी एक सर्दार रवाना किया गया। उसने बड़े जोर-शोर से गुरु साहब पर चढ़ाई की और आनंदपुर में आकर खूब लूट-पाट मचाई। गुरु साहब के पास उस समय बहुत कम सेना थी; इसलिये बहुसंख्यक मुगलों का सामना कर व्यर्थ अपना बल क्षय करना उन्होंने उचित न समझा और वे किला बंद कर चुपचाप बैठे रहे। पर जब रात हुई और चारों तरफ अच्छी तरह अँधेरा छा गया तो एकाएक किले से बाहर निकलकर उन्होंने मुगलों पर ऐसा छापा मारा कि सब के होश-हवास गुम हो गए। कितने तो सोते ही काट डाले गए, कितने ही सिक्खों की लगाई बारूद की अग्नि से जलकर कहाँ उड़ गए, कुछ पता भी न लगा। जो बाकी बचे उन्होंने भागकर ज्यों त्यों कर अपनी जान बचाई। उनका बहुत सा बचा-बचाया रसद-पानी और गोली गोला बन्दुक सिक्खों के हाथ लगा। सिक्खों ने आठ कोस तक शत्रुओं का पीछा किया और वे बड़ी भारी शिकस्त देकर आप आनंदपूर्वक अक्षतशरीर घर लौट आये। मुगलों ने जो कुछ आनंदपुर में लूटा था, सभी वापस मिला। अब तो शाहजादा मुअज्जम ने देखा कि मामला साधारण नहीं है। वह फिर बड़े जोर-शोर से चढ़ाई करने की तैयारी

करने लगा। जब लड़ाई की तैयारी हो ही रही थी तो मुंशी नंदलाल मुलतानी, जो कि गुरु घर का पुराना सेवक और भक्त था, हाथ जोड़ शाहजादा मुअज्जम के सामने आया और बोला—"हजूर, गोविंदसिंह एक खुदापरस्त साधारण फकीर है। उस पर बादशाही ताकत की आजमाइश करना सरासर भूल है। यदि आप जीत गए तो वह कल लँगोटी पहन फिर ज़ंगलों में जाकर भजन करने लगेगा। यदि खुदा न करे कहीं हार हुई तो बादशाही ताकत की सख्त बदनामी होगी। इसलिये मुनासिब यही है कि उससे छेड़-छाड़ न की जाय।" शाहजादा ने कहा—"अच्छा, यदि आगे से वह शांतिपूर्वक रहना स्वीकार करे तो मैं उसे माफ कर सकता हूँ।" इसी मुंशी की मारफत गुरु साहब से शांति के पैगाम चलने लगे। पर अभी कुछ तय नहीं हुआ था कि एक नई आपदा और आ खड़ी हुई।

शाहजादा मुअज्जम की सेना के आने से सारे पहाड़ी राजे अपने अपने ठिकाने लग गए थे और बहुतों ने शाहजादे की सहायता करके अपने भाइयों की गुलामी की बेड़ी और भी दृढ़तर कर दी। उधर तो गुरु साहब और शाहजादे में शांति स्थापना और प्रेम का पत्रव्यवहार हो रहा था, इधर अन्य पहाड़ी राजाओं ने अवसर पा अपना पहला वैर साधने का संकल्प किया और गुरु साहब से कहला भेजा—"आपके सिक्ख लोग अकसर हमारे इलाकों में आकर लूट-पाट किया करते हैं, यह बहुत बुरा है। आपको इसका बहुत जल्द इंतजाम करना चाहिए; क्योंकि आपके पैर दिन पर दिन अधिक फैलते जाते हैं। यदि योंही पैर फैलाना और लोगों पर अत्याचार करना अभीष्ट हो तो

इन लोगों के इलाके से दूर और कहीं जा रहिए। नहीं तो हम लोगों को विवश हो आपसे विरोध करना पड़ेगा।" गुरु साहब इन पहाड़ी राजाओं का पत्र पा चकित और क्रुद्ध हुए। इनमें से अवसर पड़ने पर कइयों की उन्होंने सहायता की थी। अब यह कृतघ्नता देखकर उन्हें बड़ा क्रोध आया। एक ओर बादशाही सेना पड़ी हुई थी और इस मौके पर युद्धाग्नि सुलगाकर ये लोग गुरु साहब को भस्म कर देना चाहते थे; क्योंकि बात यह थी कि गुरु साहब का प्रबल होना इन लोगों को बहुत खटकता था। यद्यपि इन्होंने कई बार उनसे सहायता ली थी; पर इनके मन में यही था कि जब अवसर होगा, इनको मटियामेट करके छोड़ेंगे। "एक साधारण 'गद्दी का गुरु' जो कि हम लोगों की भिक्षा से पला है, ऐसा बलवान् हो जाय की हम तिलकधारी क्षत्रिय राजाओं को मौके पर हाथ जोड़कर सहायता माँगनी पड़े! धिक्कार है हम लोगों पर! आश्चर्य्य नहीं कि कल वह हम सब का राजेश्वर बन बैठे और धर्म्म तथा खालसा पंथ की आड़ में साम्राज्य स्थापन कर आप चैन करने लगे। शाहजादे से प्रेम का पत्र-व्यवहार भी अच्छा नहीं।" यही सब सोचकर इन मिथ्याभिमानी राजाओं ने बड़ी बुरी सायत में गुरु गोविंदसिंह को विरोध का सँदेसा भेजा। गुरु साहब ने राजाओं को उत्तर लिख भेजा—"भारतभूमि पर मेरा उतना ही हक है, जितना आप लोगों का; और जिस भूमि पर मैं रहता हूँ, वह मैंने द्रव्य देकर खरीदी है कुछ आपसे भीख नहीं माँगी ली है। सिक्खों से आप लोगों ने कुछ अनुचित व्यवहार किया होगा। इसी कारण उन्होंने आपके इलाकों मे लूट-पाट मचाई होगी। अकारण इस प्रकार की कार्रवाई करने की मेरी सख्त मुमानि-

यत है। उचित तो यही था कि आप लोग इस समय मेरी सहायता में तत्पर रहते; सो उलटे विरोध पर उतारू हुए हैं, यह बड़ी लज्जा की बात है। खैर, इसका फल भी हाथों हाथ पाइएगा।" राजा लोगों की क्रोधाग्नि में घी पड़ा। उत्तर में उन लोगों ने केवल लिख भेजा कि बहुत जल्द यह इलाका छोड़कर चले जाओ; नहीं तो बड़ी बेइज्जती के साथ निकाले जाओगे। गुरु साहब ने केवल इतना ही लिखा कि हम तैयार हैं, जो अकाल पुरुष की मर्जी। बादशाही युद्ध बंद रहने के कारण उस समय तक गुरु साहब के पास अच्छी सेना तैयार हो गई थी और राजाओं को भी यह समाचार विदित था। इसलिये वे लोग बड़ी भारी तैयारी करने लगे और थोड़े ही दिनों में करीब बीस हजार सेना इकट्ठी हो गई। इसी बीच में एक दिन थोड़े से सिक्ख कुछ अन्न-वस्त्र खरीदने के लिये पहाड़ी ग्रामों में गए थे। वहाँ राजा अजमेरचंद ने दो राजपूत जागीरदारों को उभाड़कर उनको घिरवा दिया और दोनों तरफ तलवारें चलने लगीं। सिक्खों की बहादुरी के आगे उनमें से एक राजपूत मारा गया और कई घायल होकर भाग निकले। तात्पर्य्य यह कि इस प्रकार की छेड़-छाड़ जारी रही। अब तक गुरु साहब के पास भी आठ हजार सेना तैयार हो गई थी। उधर से राजाओं ने भी चढ़ाई कर दी, जिनमें अजमेरचंद विलासपुरिया मुख्य था। इसने बड़ी धूम-धाम से धावा करके गुरु साहब का निवास-स्थान आनंदपुर का किला चारों ओर से घेर लिया। गुरु साहब किला बंद कर भीतर ही बैठे रहे और इस समय बाहर मैदान में लड़कर सैन्य-ध्वंस करना उन्होंने उचित न समझा। केवल किले के बुर्ज और दीवारों पर से तोप और बंदूकों की बाढ़

दागने लगे। इधर से भी तोपें अग्नि उगल रही थीं और गोली तथा तीरों की वर्षा हो रही थी। दिन भर खूब अग्नि-वर्षा हुई। शूर वीरों ने खूब अग्नि की पिचकारी से होली खेली और कायरों के जी दहल गए। दिन भर के युद्ध के बाद जब शत्रु थककर सो गये तो अँधेरी रात में गुरु साहब ने किले से बाहर निकलकर शत्रु पर एकाएक हमला कर दिया। बहुत से मारे गए और सहस्रों घायल हुए और जब तक वे सँभलकर सामना करने के लिये तैयार हो, तब तक गुरु गोविंदसिंह फिर किले में जा घुसे। यों ही दिन को किले के भीतर तोपों से लड़ते और रात्रि को एकाएक छापा मारते जिससे पहाड़ी राजाओं की बड़ी भारी हानि हुई और दिन पर दिन उन लोगों का बल घटने लगा। एक दिन राजाओं ने एक मतवाले हाथी को शराब पिला सिर पर एक बड़ा भारी लोहे का तवा बाँध और सूँड़ में तलवार पकड़वा किले का फाटक तोड़ने के लिये भेज दिया।

गुरु साहब का एक शिष्य दुनीचंद था। वह प्रायः अपनी बहादुरी की डींग मारा करता था। इस मौके पर गुरु साहब ने उसे बुलवाकर कहा—'जाओ, हाथी मार आओ।" सुनते ही उसके होश हवा हो गए और हाथी मारने के बहाने से वह किले से कूदकर भाग गया। पीछे गुरु साहब ने दूसरे शिष्य विचित्रसिंह को हाथी से सामना करने की आज्ञा दी। वह हाथ में बर्छी ले मत्त वारण के सामने आया और ताक-कर उसने एक बर्छी ऐसी मारी कि वह लोहे के तवे को भेदती हुई हाथी के मस्तक में घुस गई। अब तो वह मत्त प्रबल हस्ती पीड़ा से चिग्घाड़ता हुआ पीछे की ओर लौट पड़ा और अपने राजाओं की सेना को रौंद-राँदकर मटिया-मेट

दिया। इस दोहरी आपदा से सेना एकबारगी घबरा उठी और सामना करना छोड़ भाग निकली। कितने ही सिक्खों की तेज तरवारों से मारे गए। कुछ दूर तक भागकर जब सारी सेना एकत्र होकर ठीक व्यूहबद्ध होने लगी तो भागकर सिक्ख लोग फिर किले के भीतर आ घुसे। अबकी बार राजाओं ने एक अनोखी चाल चली। उन्होंने आटे की एक गौ बनवा उसके गले में एक पत्र बाँधा और उसमें लिखा कि आपको इसी की कसम है, यदि किला छोड़कर मैदान में न आवें। गुरु साहब ने इसकी कुछ परवाह न की; पर उनकी माता जी ने बहुत जिद्द की और किला छोड़ने के लिये गुरु साहब को विवश किया। मातृभक्त गोविंदसिंह किला छोड़ कर्तारपुर की ओर रवाना हुए और मार्ग में एक टीले पर मोरचा जमाया। पहाड़ी राजाओं ने उन्हें यहाँ आ घेरा और दोनों तरफ से खूब घोर युद्ध हुआ। यद्यपि पहाड़ियों ने बहुतेरा जोर मारा, पर हमारे सिक्ख जवानों की वीरता के आगे उन्हें पराजित होकर भागना ही पड़ा। अब तो ये लोग बड़े परेशान हुए और बादशाही सूबा सरहिंद के नवाब के पास जा पुकार की कि "हजूर! देखिए गोविंदसिंह ने हमारी क्या दशा की है। अब आपकी सहायता के बिना काम नहीं चलेगा।" उसने कहा कि युद्ध का खर्च दो तो तुम्हें सहायता के लिये सेना मिल सकती है। बीस हजार रुपया देने पर दो तीन हजार अच्छी सुशिक्षित सेना दो अनुभवी मुगल सर्दारों के अधीन इन लोगों के साथ हुई। इन्होंने आते ही गुरु साहब पर धावा बोल दिया। गुरु साहब इस समय कर्तारपुर में ही थे, जहाँ संवत् १७५८ के मार्गशीर्ष महीने में बड़ा घनघोर युद्ध हुआ। गुरु साहब

किले के भीतर से तोपों से लड़ रहे थे। इधर से भी तोपों की बाढ़ दागी जा रही थी। दोनों ओर के सहस्रों वीर मरे और घायल हुए; पर पहाड़ी लोग गुरु साहब पर कुछ प्रभाव न डाल सके। एक समय एक बुर्ज पर बैठे हुए गुरु साहब साफा बाँध रहे थे, पीछे सेवक खड़ा चवँर कर रहा था, कि राजा अजमेरचंद ने गोलंदाज को बुला गुरु साहब को गोले का निशाना बनाने की आज्ञा दी। जहाँ गुरु साहब बैठे थे, वहाँ एकाएक धुंधकार हो गया और धूएँ और गंधक-बारूद का गंध के सिवाय कुछ भी न सुझाई देने लगा। जब धूआँ कुछ साफ हुआ तो गुरु साहब ने देखा कि चवँर डुलानेवाले का कहीं पता नहीं। मांस के जलने की गंध आ रही है। बड़ी खैर हुई। गुरु साहब साफ बच गए और वह चवँर करनेवाला उड़ गया। "जाको राखे साँइयाँ, मार न सकिहै कोय।" ऐसे अवसरों पर दैव बली कहा जाता है। अस्तु, गुरु साहब ने अपने गोलंदाज को बुला निशाना मारने को कहा, जिससे शत्रुओं की ओर का गोलंदाज गिरा। राजा अजमेरचंद दूर हट गया था, नहीं तो वह भी न बच पाता। दिन भर की लड़ाई के बाद जब रात्रि हुई और दोनों ओर की सेना ने विश्राम किया तो गुरु साहब ने तोप की घटना यादकर कर्तारपुर के किले को सर्वथा सुरक्षित न समझा और वे एक गुप्त मार्ग से निकलकर रातो-रात सारी सेना के साथ किला आनंदगढ़ में आ गए। विदित होने पर शत्रुओं ने वहीं आ किला घेरना आरंभ किया। अब की बाहर निकल सिक्ख जवान खूब लड़े। उन्होंने सूबे सरहिंद की सेना को चार कोस तक पीछे हटा दिया; पर फिर उन्हें स्वयं पीछे लौटना पड़ा और सब लोग किले में आ प्रविष्ट हुए।

अब की शत्रुओं ने किला अच्छी तरह से घेर लिया। आने-जाने के सारे मार्ग अवरुद्ध कर दिए। गुरु साहब किला बंद किए पूर्ववत् बड़ी वीरता से तोपों से लड़ते रहे। दो चार दस करके पंद्रह दिवस यों ही व्यतीत हो गए; पर न तो किले का फाटक टूटा और न मुसलमानी सेना ही हटी। बड़े संकट का सामना था। इधर किले के भीतर का रसद-पानी चुकने लगा था। दाल रोटी की कौन कहे, सिक्ख लोग एक एक मुट्ठी चने चबा चबाकर मोरचों पर डटे थे; पर अब वह भी चुक गया और भूखों मरने के दिन आए। दो-एक दिन केवल पानी पर गुजारा चला। जब कोई सहारा न रहा और बहुत से सिक्ख सिपाही मारे गए और घायल भी हुए तो गुरु साहब ने किले में बंद रहकर यों सिपाहियों का मरना अनुचित समझ फाटक खोल दिया और व्यूहबद्ध हो, पृष्ठ और पार्श्व का पूरा बचाव करते हुए वे बाहर मैदान में निकल आए। यद्यपि शत्रुओं ने बहुतेरा चाहा और बहुत कुछ जोर भी मारा कि इस व्यूह को भेदकर गुरु गोविंदसिंह को पकड़ लें; पर गुरु साहब की व्यूहरचना की चतुराई और रण-कौशल से उन लोगों की कुछ दाल न गली। जब व्यूह की लाइन का एक सिपाही गिरता तब दूसरा तत्क्षण वहाँ आ खड़ा होता था। यों ही लड़ते भिड़ते, अपना बचाव करते हुए, शत्रुओं को घुमाते फिराते गुरु साहब बची हुई सारी सिक्ख सेना के साथ सतलज पार हो गए और थकी हुई पहाड़ी और सरहिंदी सेना पीछे को वापस आई। उससे जहाँ तक बन पड़ा, उसने आनंदपुर के किले को लूट पाटकर वीरान किया। पर गोविंदसिंह का खटका इनके दिल से न मिटा। यद्यपि अब की लड़ाई में गुरु साहब की हार हुई थी; पर तो भी इनकी वीरता

और रण-निपुणता की धाक बैठ गई थी। गुरु साहब सतलज पार वसूली नामक ग्राम में जाकर ठहरे और वहाँ थकी-माँदी सेना के साथ कुछ दिनों तक उन्होंने विश्राम किया। वसूली का राजा गुरु साहब का परम मित्र था। उसनें इस अवसर पर इनकी बड़ी खातिरदारी की और सब तरह से इनकी थका-वट मिटाने और आराम करने का प्रबंध कर दिया। कभी-कभी दिल बहलाने के लिये वह गुरु साहब को शिकार इत्यादि के लिये बाहर भी ले जाया करता था। एक दिन आखेट करते हुए वनों में इलाका जंबूर के राजा से भेंट हो गई। वह बड़ी प्रीति से गुरु साहब को अपने घर ले गया। कुछ दिन उसके घर रहकर गुरु साहब ख्यालसर में आ गए। वहीं उन्होंने पुनः अपने शिष्यों और अनुयायियों का एक बड़ा दरबार किया। समाचार पाकर दूर दूर से बहुत से शिष्य और नवयुवक सिक्ख योद्धा दरबार में हाजिर हुए। गुरु गोविंदसिंहजी ने सबका यथायोग्य सत्कार कर, एक दो-नली भरी बंदूक उठाई। यह बंदूक जंबूर के राजा ने उन्हें भेंट की थी। बंदूक उठाकर उन्होंने कहा कि क्या कोई ऐसा वीर है जो आप लक्ष्य बनकर इस बंदूक की शक्ति की परीक्षा करे। गुरु साहब के इतना कहते ही सिक्खों की जमात की जमात उठ खड़ी हुई और सबने लक्ष्य बनने की इच्छा प्रकट की। गुरु साहब इन लोगों की शक्ति और श्रद्धा देख परम संतुष्ट हुए और उपस्थित राजा और अन्य राजाओं के जो गुप्तचर वहाँ मौजूद थे वे दाँतों उंगली दबाने लगे। क्यों न हो, जिसके अनुगामी जरा से इशारे से बेखटके प्राण देने को तैयार हैं उसकी सर्वदा विजय क्यों न हो? अस्तु; दरबार विसर्जन कर और शिष्यों को एक भावी बड़े युद्ध के लिये तैयार रहने

की सूचना देकर गुरु साहब अपने घर आनंदपुर को वापस आए। ख्यालसर में, जहाँ उन्होंने दरबार किया था, उनके स्मारक में एक मंदिर बना हुआ अब तक वर्तमान है। आनंद-पुर आते हुए राह में एक लड़ाई और भी लड़नी पड़ी। बात यह थी कि ख्यालसर से रवाना होते हुए राह में मंडी के राजा ने इनको निमंत्रण देकर बड़ी खातिर से अपने यहाँ टिकाया। व्यास नदी के तीर एक सुंदर उपवन में इनको डेरा दिया गया, जहाँ स्मारक-रूपी एक मंदिर पीछे से बना। वह भी अब तक वर्तमान है। अभी गुरु साहब यहीं टिके हुए थे कि इन्हें खबर मिली कि बहुत से शिष्य तरह तरह की भेंट और तोहफे लेकर गुरुजी के दर्शनों को आते थे, जिनको मार्ग में कलमोठा के राजा ने लूट लिया। उक्त समाचार के पाते ही गुरुजी ने अपने बड़े पुत्र अजीतसिंह को थोड़े से सिक्ख जवानों के साथ कलमोठा विध्वस्त करने के लिये भेज दिया। उधर राजा कलमोठा का मित्र ज्वालामुखी का निवासी विजयभारती महंत, अपने पाँच सौ नागा सवारों के साथ, राजा की सहायता को आ पहुँचा। यह समा-चार पा गुरु साहब स्वयं उधर को रवाना हुए और राजा कलमोठा को उन्होंने खूब मजा चखाया। नागा सवार सिक्खों के सामने तनिक भी न ठहर सके। युद्ध में विजय पा सिक्ख सवारों ने राजा के इलाकों में खूब लूट-पाट की और विजयभारती के मठ को भी विध्वस्त कर डाला। इन सब बखेड़ों से छुट्टी पा गुरु साहब आनंदपुर में विराजने लगे। अब एक रोज किले में दरबार कर आपने अपने पाँचों पुत्रों का "अमृत संस्कार" किया अर्थात् सब शिष्यों की तरह अमृत चखा उन्हें भी शिष्य और वीर कोटि में प्रविष्ट कराया

और उसी प्रकार सारी प्रतिज्ञाएँ करवाईं। अपने पुत्र और अन्य शिष्यों में उन्होंने कुछ भेद-भाव न रखा। इस संस्कार के बाद गुरु साहब ने एक बड़ा सार्वजनिक महोत्सव किया और शिष्यों तथा अभ्यागत ब्राह्मण साधुओं को सत्कारपूर्वक खूब भोजन कराया और दान-दक्षिणा दी। थोड़े दिनों में सूर्य्य ग्रहण का पर्व था और कुरुक्षेत्र में लक्षों हिंदुओं का जन-समुदाय इकट्ठा होनेवाला था। ऐसे उत्तम अवसर को हाथ से जाने देना गुरु साहब ने उचित न समझा। मेले में जाकर भारत मात्र के हिंदुओं में सनातन धर्म की रक्षा और वीर व्रत का उपदेश करना ठानकर, आषाढ़ मास संवत् १७५९ विक्रमी में, वे कुरुक्षेत्र पहुँच गए। डेरा और तंबू इत्यादि खड़ाकर उन्होंने कार्य्य आरंभ कर दिया। नित्य सुबह-शाम उपदेश हुआ करता था, जिसमें अपनी स्वाभाविक वाग्मिता के साथ सनातन धर्म की रक्षा और वीर धर्म (खालसा पंथ) का उपदेश होता था। लक्षों नर-नारी इनके उपदेश से पावन होकर डेरे को जाते और कितने ही खालसा धर्म अंगीकार कर गुरु का बल बढ़ाते। धर्म्मोपदेश के साथ वीरधर्म्म की चर्चा भी अधिक रहा करती थी और अच्छे अच्छे उत्साही हिंदू शूर वीर युवक भी गुरु साहब के दर्शनों को आते थे। गुरु साहब सबका यथायोग्य सत्कार करते और भारतमाता की कथा सुनाते थे। इन वीरों में से चंद्रनाथ नाम का एक राजपूत था। वह बड़ा बहादुर और तीरंदाज था। गुरु साहब उसकी बहुत खातिर किया करते थे। पर यह राजपूत वीरता के घमंड में इसकी कुछ परवाह न कर अपने मुँह आप अपनी शेखी बघारा करता था। एक दिन वह कहने लगा—"मेरे ऐसा

तीरंदाज संसार में है ही नहीं!" गुरु साहब उसकी डींग सुनकर मन ही मन मुसकराए और बोले– "कृपापूर्वक जरा अपनी इस अलौकिक रण-निपुणता का आभास मुझे भी करा दीजिए।" इस पर बड़े घमंड से उसने धनुष पर बाण चढ़ा-कर चलाया जो दो मील के लक्ष्य को वेधकर शांत हुआ। आस-पास के लोग तारीफ करने लगे। अब की बार गुरु साहब ने शर संधाना और तीन मील के लक्ष्य को वेध दिया। यह देखकर उसके आश्चर्य्य का ठिकाना न रहा और वह गुरु साहब के सामने मत्था टेककर बोला – क्षमा कीजिए, महाराज! मुझे आपके अलौकिक सामर्थ्य का ज्ञान न था। मिथ्या ही अपनी तारीफ के तार बाँधता था। गुरु साहब बोले—यह तो कोई बात नहीं है, करतब और अभ्यास का सारा खेल है। अहंकार अच्छी बात नहीं है। वह राजपूत बहुत लज्जित और नम्र हो गया। तदनंतर गुरु साहब ने ब्राह्मणों और अतिथि अभ्यागतों को ग्रहण के अवसर पर बहुत कुछ दान-दक्षिणा दी, सबका यथोचित सत्कार किया और मणीराम नाम के एक विद्वान् ब्राह्मण को बहुत कुछ दान दक्षिणा के साथ अपना दस्तखती एक पत्र भी दिया, जो उसके वंशधरों के पास अब तक मौजूद है। सूर्य्यग्रहण का मेला समाप्त होने पर गुरु साहब चमकौड़ नामक ग्राम में आकर ठहरे। मैदान में डेरे पड़े हुए थे। दैवात् उधर से दो सहस्र बादशाही सेना जा रही थी। गुरु साहब को मैदान में डेरा डाले हुए देखकर उन लोगों ने इन पर हल्ला बोल दिया। पर हमारे सिक्ख सवार बेखबर न थे। उन्होंने जमकर वह तलवार के जौहर दिखलाए कि मुगलों को मैदान छोड़कर सीधे लाहौर का मार्ग लेना पड़ा। अब गुरु साहब

सीधे आनंदपुर को चले आए। शत्रुओं ने जो किला तोड़-ताड़ दिया था, उसकी मरम्मत करवाकर उसे खूब सुदृढ़ बनवा दिया और जगह जगह सफीलों पर पहले की तरह तोपें चढ़वा दी गईं। यथोपयुक्त स्थान स्थान पर और भी अस्त्र-शस्त्रों का समावेश करवा दिया गया। इन्हीं दिनों काबुल का एक खत्री गुरु साहब के दर्शनों को आया और उसने, बहुत कुछ धन-रत्न के साथ, पचास अच्छे अच्छे शूर-वीर पठान गुरु साहब को भेंट किए। गुरु साहब ने इन लोगों को यथा-योग्य सैनिक पदों पर नियुक्त कर दिया और वे आनंदपूर्वक अपने किले आनंदपुर में निवास करने लगे। जब पहाड़ी राजा भीमचंद और अजमेरचंद ने, जो इनके कट्टर शत्रु थे. यह समाचार सुना कि गोविंदसिंह फिर आनंदपुर में लौट आया है और बड़े ठाट बाट से युद्ध की तैयारी कर रहा है तो उनका खून उबलने लगा। अकेले लड़कर जय पाना असंभव है, यह अनुभव उन्हें हो चुका था, और गोविंदसिंह का दिन पर दिन जोर पकड़ते जाना भी उन्हें बड़ा अखरता था; इसलिये उन्होंने शाहंशाह औरंगजेब को यह पत्र लिखा कि हुजूर, आपकी सलतनत में अब तक हम लोग अमन-चैन से रहते थे। कोई भी उँगली दिखानेवाला न था। पर अब एक बला ऐसी आई है जिससे हम लोगों का जान-माल हर दम खतरे में रहता है। तेगबहादुर नाम का एक फकीर संवत् १७३२ में शाही हुक्म से बागी समझकर मरवाया गया था। उसी का लड़का यह गोविंदसिंह है, जिसने यह आफत बरपा कर रखी है। इसने एक नया मजहब चलाया है। वह अपने चेलों को कवायद और लड़ाई के फन में होशियार करके अपनी फौज में भर्ती कर लेता है और नगद रुपयों के

साथ गोली-बारूद वगैरह भी अपने चेलों से भेंट में लेता है, जिससे इसके पास बहुत सी फौज भी इकट्ठी हो गई है और हथियार तथा साज-सामान की भी कमी नहीं है। इसने कई मजबूत किले भी बनवा लिए हैं और अपने कट्टर सिपाहियों की बदौलत, जिनमें इसने एक नई रूह फूँक दी है, यह किसी को कुछ नहीं गिनता। बड़े बड़े लुटेरे डाकू और बादशाही बागी इसके साथ हो गए हैं और वे रोक-टोक लूट-पाट कर लोगों का सर्वनाश कर रहे हैं। हम लोग इससे बहुत तंग आ गए हैं। कई बार हम लोगों ने मिलकर इस पर चढ़ाई भी की। पर इसकी दिलेरी और चालाकी से हारकर हम लोगों को पीछे हट जाना पड़ा, यहाँ तक कि सूबा सरहिंद की मदद भी कुछ कारगर न हुई। इस शैतान की ताकत अगर एकदम जड़ से न उखाड़ दी जायगी तो, जैसी कि इसकी मनशा है, यह किसी रोज आपकी सलतनत में भारी गदर मचावेगा। हिंदुओं को यह आपके खिलाफ उभाड़ता और उन्हें पट्टी पढ़ाया करता है; अभी से उसने अपने को सच्चा बादशाह मशहूर कर रखा है, इत्यादि इत्यादि। यह सब तो उन्होंने पत्र द्वारा लिखा; फिर आप भी कई पहाड़ी राजाओं के साथ शाही दर्बार में जा पुकारा और ऊपर लिखा वृत्तांत जबानी शाहंशाह को सुनाया। बादशाह औरंगजेब, जिसकी कूटनीति ने राजपूताने और दक्षिण दोनों प्रांतों में अग्नि सुलगा रखी थी, पंजाब की इस नई आपदा का हाल सुनकर बहुत झल्लाया और तत्काल ही उसने सूबा सरहिंद के नाम शाही हुक्मनामा भेजा कि "बागी गोविंदसिंह को पकड़कर फौरन दर्बार में हाजिर करो" और साथ ही इसके कुछ फौज भी सूबा सरहिंद की सहायता के लिये भेजी

गई। सूबा सरहिंद पहाड़ी राजाओं के साथ शाही फौज लेकर संवत् १७५९ के फाल्गुन मास में बड़ी धूम-धाम से आनंदपुर पर चढ़ आया। सिक्खों को खबर पहुँच चुकी थी कि "बादशाह ने गुरु साहब को पकड़कर ले जाने की आज्ञा दी है;" इसलिये बहुत से योद्धा इस समय यहाँ इकट्ठे हो गए थे और गुरुजी के लिये सब कुछ करने को तैयार थे। बादशाही सेना के आते ही गुरु साहब भी मैदान में निकले और तुरंत ही भयंकर युद्ध छिड़ गया। दोनों तरफ से कड़ी मार होने लगी। बंदूक, गोला-गोली के शब्द और अग्नि की भयानक वर्षा के बीच वीर लोग हाथों में तलवार और बर्छी लिए आगे बढ़ते और कायर पीछे दबके जाते थे। रक्त की नदी बहने लगी और घायलों की 'हाय हाय' तथा वीरों के 'मार मार' शब्द से रणभूमि गुंजायमान हो उठी। तात्पर्य्य यह कि चार पाँच रोज तक बड़ा भयंकर युद्ध हुआ। एक ओर बादशाही सुशिक्षित सेना और दूसरी ओर खालसा धर्म्मोन्मत्त वीरों की तलवारों ने कोहराम मचा दिया। मुगलों ने सिक्खों के व्यूहभेद की बहुत कुछ चेष्टा की; पर वे सफल-मनोरथ न हो सके। जब वे आगे बढ़ते, तलवार और बर्छी की दीवार खड़ी पाते। उनकी प्रबल तोपें भी इस दीवार को भग्न न कर सकीं; क्योंकि पार्श्व भाग में गुरु साहब की तोपें भी आग उगल रही थीं। बादशाही सेनापति 'साधारण बागी गोविंदसिंह' का शौर्य्य और प्रताप देखकर चकित और भय-भीत हुआ। गुरु साहब अब तक केवल वार बचाते थे। जब उन्होंने पाँच दिन बादशाही सेना के कई एक भागों को कुछ निर्बल होते देखा तो तत्क्षण वे अपनी प्रधान सेना के साथ उस पर जा टूटे और इस वेग से इनका यह आक्रमण

हुआ कि बादशाही सेना को कई कोस पीछे हट जाना पड़ा। जब कुछ सँभलकर मुगल लोग फिर सम्मुखीन हुए तो बादशाही सेना का एक सवार अजीमखाँ गुरु साहब के सामने आ गया और उसने गुरु साहब पर तलवार चलाई। गुरु साहब ने उसके वार को ढाल पर लिया और जब तक वह सँभले तब तक उनकी दुर्गादत्त तलवार इस तेजी से उसकी खोपड़ी पर जा पड़ी कि वह दो टूक होकर घोड़े के नीचे नजर आया। इतने ही में मुगल सर्दार पैदाखाँ तलवार घुमाता हुआ सामने आ निकला और सामने आते ही लपककर बड़े जोर से गुरुजी पर उसने वार किया। गुरु साहब उछलकर बगल में हो रहे और बगल ही से उन्होंने उसके पार्श्व भाग में खाँड़ा घुसेड़ दिया। एक आह और चीख के बाद वह भूमि पर लोटता नजर आया और दो-एक बार पैर फटकारकर यमलोक को सिधारा। अब तो किसी की हिम्मत न हुई कि गुरुदेव पर वार करता या सामने आता। सारे सरदार उनसे दूर ही दूर रहकर दबाव डालने की चेष्टा करने लगे। गुरु गोविंदसिंह की सेना में कई वीर पठान भी नौकर थे। इस अवसर पर सैयद बेग और मामूखाँ दो योद्धाओं ने अच्छे हाथ दिखलाए। तलवार खींच जिस समय ये देव ऐसे वीर शाही फौज पर टूटे तो बहुतों के छक्के छूट गए। मुगल सवार और पैदल इनकी चोटों के सामने भेड़ बकरी ऐसे भागने लगे! जिधर इनका हाथ पड़ता, मैदान साफ नजर आता था। अंत को ज्यों त्यों हरिचंद जम्सुवलिया एक बहादुर सवार इनके सामने आया; पर मामूखाँ ने एक तलवार ऐसी मारी कि उसकी खोपड़ी ककड़ी सी कटकर नीचे जा गिरी। यह दशा देख अब तो मुगलों के नामी नामी

बहादुर लोग जुटकर इधर आ गए और इनमें से एक दीन-बेग नाम के योद्धा ने मामूखाँ का काम तमाम कर दिया। अमने साथी मामूखाँ की यह दशा देख सैयद बेग को बड़ा क्रोध चढ़ आया और दो कदम पीछे हटकर उछलकर उसने ऐसा तलवार मारी कि गेंद ऐसा उछलता हुआ दीनबेग का सिर दूर जा पड़ा। अब तो गुरु साहब ने मुगलों की निर्बलता देख एकदम बड़े जोर से शत्रुओं पर हल्ला बोल दिया और 'वाह गुरु की फतेह' के आकाशभेदी नाद से आकाश गुंजायमान हो उठा। मुगल सेना, जो बहुत थक गई थी, सिक्खों के इस प्रबल वेग को सँभाल न सकी और उसके पैर उखड़ गए। सारी बादशाही और पहाड़ी राजाओं की सेना व्यूहभंग करके भाग निकली। सिक्खों ने बहुत दूर तक पीछा किया और बादशाही सेना का बहुत कुछ माल असबाब इनके हाथ लगा, जिसकी लूट भी बड़ी सरगरमी से हुई। इस झगड़े में सब उत्पात की जड़ राजा अजमेरचंद सख्त घायल हुआ और उसका दीवान भी मारा गया। तात्पर्य यह कि गुरु साहब की पूरी जीत हुई और बादशाही सेना को एक साधारण बागी के सामने ऐसी लज्जाजनक हार कभी नहीं खानी पड़ी थी। इस हार का संवाद जब शाहंशाह औरंगजेब को पहुँचा तो युगपत् लज्जा और क्रोध से उसके सिर में चक्कर आ गया और उसने तत्काल लाहौर और कश्मीर के सूबों के नाम शाही फरमान भेजा कि "अभी मारोमार आनंदगढ़ पर चढ़ाई करके उसकी ईंट से ईंट बजा दो और बागी गोविंदसिंह का सिर काटकर हाजिर करो।" अब क्या था? लाहौर और कश्मीर दोनों सूबों की पचास हजार सेना ने आन की अना में किला आनंदगढ़ आ घेरा।

गुरु साहब इसके लिये तैयार थे। उन्हें खूब मालूम था कि इस युद्ध में वारा-न्यारा होगा। इसलिये बहुत सी सेना – जहाँ तक इकट्ठी हो सकी – और अस्त्र-शस्त्र, रसद-पानी, गोली गोला बारूद सब इन्होंने जमा कर रखा था। आठ हजार वेतनभोगी सेना और दस हजार गुरु के सच्चे भक्त वीर सिक्ख जवान धर्म के लिये, खालसा पंथ के नाम पर, प्राण देने को तैयार हो गए। पचास हजार के मुकाबले में कुल अठारह हजार सेना के साथ गुरु साहब ने मुकाबला करने की ठानी। केवल आनंदगढ़ ही में सारी सेना को बंद रखना उचित न जान और और किलों की रक्षा का भी उन्होंने यथोपयुक्त प्रबंध किया; क्योंकि उन्हें पता लग गया था कि सारी बादशाही सेना आनंदगढ़ ही पर मिलकर दबाव डालेगी। ऐसी हालत में बाहर छिपी हुई कुछ सेना का रहना बहुत मुनासिब है जो मौका पड़ने पर छापा मारके शत्रुओं को दोनों ओर से धर दबावे और इतनी बड़ी सेना एक बार चल-विचल होने पर फिर मैदान में टिक न सकेगी। इसी उद्देश्य से उन्होंने दो सहस्र सिक्ख जवानों के साथ अपने बड़े लड़के अजीतसिंह को शेरगढ़ के किले में तैनात किया और यह शिक्षा भी दे दी कि जब अवसर देखना बादशाही सेना पर पीछे से छापा मारना और फिर किले के भीतर जा फाटक बंद कर भीतर ही से लड़ना। तथा दो दूसरे वीर सर्दार नाहनसिंह और शेरसिंह को एक हजार सेना देकर लोहगढ़ किले में नियत किया। आलमसिंह और संगतसिंह को तीन सहस्र सेना के साथ दमदमे के किले में तथा उदयसिंह और ईश्वरीसिंह के अधीन एक सहस्र सेना को आगमपुरा के किले में रक्खा। सब को यह शिक्षा दे दी कि जब जब अवसर देखना,

किले से छिपकर बाहर निकल शत्रुओं पर पीछे से हमला कर देना। बाकी सेना और अपने चारों पुत्रों के साथ किले आनंदगढ़ में वे स्थित हुए। गुरु साहब एक ऊँचे बुर्ज पर बैठे हुए शत्रुओं की फौज का जमाव देख रहे थे। जब बादशाही फौज बढ़ती हुई गोले की मार के बीच पहुँच गई तो गुरु साहब ने फौरन् ही पलीता दाग देने की आज्ञा दी। एक बार ही सत्तर तोपों पर पलीता पड़ गया और बड़ा भारी प्रकाश तथा पृथ्वी को दहला देनेवाला शब्द हुआ। आगे बढ़ती हुई बादशाही सेना का एक भाग उड़कर कहाँ चला गया, इसका कुछ पता न चला। अब तो मुगल सरदारों की आँख खुली और उन्होंने तोपखाना आगे लाने की आज्ञा दी। दोतरफा गोलों की वर्षा होने लगी। थोड़ी ही देर में आकाश और पृथ्वी धुएँ और बारूद के गंध से परिपूर्ण हो गई और धुंधकार में आनंदपुर का किला छिप गया। पर इधर से भी कलेजा दहला देनेवाली तोपें प्रलय की अग्नि उगलने लगीं। कुछ देर ऐसी गोलों की मार हुई कि सिवा तोपों की गगनभेदी गड़गड़ाहट और धुएँ के कारण न तो कुछ दिखाई देता और न सुनाई पड़ता था। सिक्ख लोग किले के भीतर सुरक्षित सफीलों पर से छिपे हुए तोपें दाग रहे थे और बादशाही सेना मैदान में थी, इस कारण सिक्खों की बहुत कम हानि हुई और बादशाही सेना के कई सहस्र सिपाही एक ही दिवस में घायल हुए या मारे गए। संध्या हो गई। उस रोज की लड़ाई बंद हुई। मुगल सरदारों ने, मैदान में इस तरह सेना नष्ट करना अनुचित समझ, किसी अच्छे मोरचे की तलाश में सवार दौड़ाए। उन्हें यह गुमान भी न था कि ऐसा सख्त मुकाबिला होगा। केवल इसी उमंग में आगे बढ़े आते थे कि एक ही धावे में

आनंदगढ़ दखल कर लेंगे। सो गुरु गोविंदसिंह की यह तेजी देखकर उन लोगों ने किसी ऊँचे स्थान पर मोरचा जमाकर लड़ना उचित समझा और इस उद्देश्य से सेना को कुछ पीछे हटाया। दूसरे दिन प्रातःकाल सिक्खों ने जब मुगलों को कुछ पीछे हटते देखा तो बाहर निकलकर उन्होंने अपना मोरचा बढ़ाया। मुगल सरदार सिक्खों की यह हिमाकत देखकर बड़े क्रुद्ध हुए और उन्होंने सामने लगी हुई तोपों पर एक बार ही पलीता रख दिया। वे तोपें, वज्रनाद करती हुई, सिक्खों को ध्वंस करने लगीं। अब तो सिक्खों को अपनी भूल पर अफसोस हुआ और वे तुरंत ही भागकर किले के भीतर हो गए और भीतर ही से पूर्ववत् गोला गोली बरसाने लगे। दूसरे दिवस भी बड़ा प्रबल युद्ध हुआ। पर मुगलों के लाख यत्न करने पर भी किले की मार में कुछ निर्बलता नहीं दिखाई दी। मुगलों का शायद ही कोई गोला किले के भीतर पहुँचता था और उधर का गोला बादशाही सेना में गिरकर कुहराम मचा देता था। दूसरे दिवस भी मुगलों के कई सरदार मारे गए और हजारों सिपाही मरे और घायल हुए। तीसरे दिवस भी इसी प्रकार लड़ाई का बाजार गर्म रहा। दिन भर की कड़ी अग्नि-वर्षा के कारण संध्या समय बादशाही सेना थककर विश्रामार्थ युद्ध स्थगित होने की बाट जोह रही थी और तोपों की मार भी कुछ धीमी हो चली थी। गुरु साहब के पुत्र अजीतसिंह ने, जो अपने किले शेरगढ़ में बैठा हुआ पल पल पर गुप्तचरों द्वारा युद्ध का समाचार मँगवाता था, जब सूर्यास्त के बाद मुगलों की ढिलाई का संवाद सुना तो एक बार ही गोधूली लग्न में अपने दो हजार जवानों के साथ शत्रुओं पर पीछे से धावा कर दिया और यह संवाद

अपने पिता को भी भेज दिया। दिन भर की थकी-थकाई सेना इस आकस्मिक विपत्ति से घबराकर ज्योंही गुरु साहब के पुत्र को उसकी हिमाकत का मजा चखाने के लिये मुड़ी त्योंही इधर से गुरु गोविंदसिंह, अपने पाँच हजार सच्चे भक्त शूर वीर सिक्खों के साथ, बादशाही सेना पर टूट पड़े। तोपों को शत्रु मोड़ रहे थे, कुछ चलाई भी गईं जिससे गुरु साहब की थोड़ी बहुत क्षति भी हुई; पर इसकी कुछ परवा न कर रात्रि के अंधकार में वे शत्रु पर बाज ऐसे जा टूटे। बादशाही सेना दोनों ओर से आक्रांत हो घबरा उठी। अँधेरे में शत्रु-मित्र की कुछ पहचान न रही। मुगल आपस में लड़ मरे और इस बखेड़े में फौज का सिपहसालार दिलगीरखाँ भी मारा गया। मुगलों के छक्के छूट गए और उन्होंने भागकर जान बचाई। तीन कोस तक सिक्ख जवानों ने उन्हें खदेड़ा। फिर वे किले आनंदगढ़ को वापस आए। बहुत सा साज-सामान गोली-गोला-बारूद भी सिक्खों के हाथ लगा। एक ऊँचे टीले पर बैठा हुआ सरहिंद का सूबा और राजा अजमेर-चंद ये दोनों युद्ध का दृश्य देख रहे थे। जब सूबा सरहिंद ने मुगल सेना को हारकर भागते देखा तो वह बड़ा ही चकित हुआ और उसने राजा अजमेरचंद से पूछा कि क्या कारण है कि इतने थोड़े से सिक्ख इतनी भारी बादशाही सेना पर प्रबल हो जाते हैं और किसी प्रकार से नहीं हराए जाते। क्या इनमें कुछ दैवी करामात है या अन्य कोई कारण है? राजा अजमेरचंद भी बड़ा व्याकुल हो बोला—क्या जाने हुजूर, गोविंदसिंह क्या बला है और उसकी शिक्षा और खालसा मंत्र में क्या जादू है! जिसे वह एक बार अपनी तलवार से छुला-कर शरबत पिला देता है, वह मानों वीरता का अवतार बन

जाता है, मरने-मारने से तो तृण बराबर भी नहीं डरता और सारे प्राणियों को अपने सामने तुच्छ समझने लगता है। जब से उसने यह नया फिरका चलाया है, हिंदुओं में एक नई जान फूँक दी है। इसी बातचीत में रात्रि का एक पहर व्यतीत हो गया था। दूसरे दिवस प्रातःकाल फिर तोपों को सामने कर मुगलों ने आनंदगढ़ पर गोले बरसाने आरंभ किए। जिस टीले पर सूबा सरहिंद बैठा हुआ था, उसी टीले पर से तोपें दागी जा रही थीं। तोप के गोलों से कई सिक्ख जवान किले के भीतर मारे गए। अब तो गुरु साहब ने धनुष पर बाण चढ़ाया और तीरों की ऐसी वर्षा की कि मुगल लोग हैरान-परेशान हो गए। इनका लक्ष्य ऐसा सच्चा था कि कोई वार खाली न गया, यहाँ तक कि किले से दो कोस पर, जहाँ लाहौर तथा कश्मीर के दोनों सूबा बैठे चौसर खेल रहे थे, गुरु साहब के कई तीर जा गिरे। यह दशा देख ये लोग भयभीत और चकित हुए और तुरंत उठकर एक सुरक्षित स्थान में गए और यथास्थान सेना सजा और व्यूह रचकर आनंदगढ़ की ओर बढ़े। अब की बार इन लोगों ने किले के बहुत ही निकट आ घेरा डाल दिया और रसद-पानी जाने का मार्ग बंद कर दिया। उद्देश्य यह था कि रसद-पानी चुक जाने पर गुरु गोविंदसिंह आत्मसमर्पण करेंगे। पर सिक्खों ने इस बात को कभी स्वप्न में भी नहीं सोचा था। वे बराबर पहले की तरह अंदर से गोले-गोली की वर्षा कर युद्ध करते रहे। मुगल लोग इसका कुछ कुछ प्रत्युत्तर देकर घेरा डाले बैठे रहे। ऐसे ही कई दिवस व्यतीत हुए। एक दिन आधी रात के समय, जब चारों ओर अंधकार था और हाथ को हाथ भी सुझाई नहीं देता था, गुरु साहब के दो

सरदार नाहरसिंह और शेरसिंह जो दो बाहरी किले की हिफाजत के लिये छोड़े गए थे, सहसा मुगलों पर चढ़ आए और मुगल सेना के दोनों पार्श्व भागों पर इस जोर से उन्होंने छापा मारा कि सोते हुए मुगलों को, पूर्व इसके कि कुछ पता लगे, यमलोक का मार्ग लेना पड़ा। इधर से गुरु गोविंदसिंह ने भी पुनः वही चाल चली और रात्रि को उसी समय वे शत्रुओं पर जा टूटे। आगे पीछे बाएँ दहिने जिधर देखो उधर "वाह गुरु की फतेह" की आवाज आती थी, सिवा इसके मुगलों को कुछ भी नहीं सुनाई देता था। यद्यपि सेना दो ही चार सहस्र थी; पर अँधेरे में मुगलों को कुछ अंदाज न लगा कि कितनी सेना है; और युद्ध करना तो दूर रहा, घबराकर उन लोगों से अच्छी तरह भागते भी न बन पड़ा! ज्यों त्यों भागकर उन्होंने जान बचाई। अबकी सिक्खों ने सवेरे दस कोस तक शत्रुओं को खूब ही खदेड़ा और सीधा-सामान, गोली बारूद शत्रुओं का सभी कुछ इनके हाथ लगा। सूबा सरहिंद और सूबा लाहौर आपस में सलाह करने लगे; क्योंकि उन्हें ऐसा भान हुआ था कि गुरु गोविंदसिंह के पास पचास हजार से भी अधिक सेना है, जिसमें कुछ बाहर और कुछ भीतर छिपी रहती है और वह बड़ी कट्टर और बहादुर है। इसलिये हम लोग केवल अपनी सेना से, जिसमें से कई हजार के करीब सिपाही मारे भी जा चुके हैं और घायल हो चुके हैं, इनको हरा नहीं सकेंगे। सारा समाचार उन्होंने दिल्ली में शाहंशाह औरंगजेब को लिख भेजा। औरंगजेब यह समाचार पा बड़ा चकित हुआ। क्रोध की जगह अब उसको चिंता ने आ घेरा। बहुत कुछ सोच-विचारकर उसने पंजाब के कुल सूबों के नाम आज्ञापत्र भेज दिया कि तुम सब लोग

मिलकर एक वार ही आनंदगढ़ पर चढ़ाई कर दो। अब की बिना गोविंदसिंह को मारे या उसके किले को तहस-नहस किए यदि पीछे लौटोगे तो सख्त सजा दी जायगी। बादशाही आज्ञा पा सब सूबों के हाकिम, पार्वतीय राजाओं के साथ, संवत् १७६१ विक्रमी के चैत्र मास में किले पर चढ़ आए। अगणित मुगल सेना बादलों की तरह आनंदगढ़ पर उमड़ आई।

विचित्र दृश्य था। बादशाही सेना समुद्र-रूप थी और उसके बीच द्वीप-रूप आनंदगढ़ का किला शोभायमान था। एक साधारण किले और धर्म्मयाजक को ध्वंस करने के लिये इतनी धूम-धाम से चढ़ाई कभी नहीं हुई होगी। बादशाही सेना मानों भीषण समुद्रवत् आनंदगढ़ को डुबाने चली आ रही थी। बुर्ज पर खड़े हुए गुरु गोविंदसिंह ने सब कुछ देखा। लक्ष से अधिक सेना देखकर वे कुछ चिंतित हुए, पर "अकाल पुरुष की जो मर्जी" यही संतोष कर युद्धार्थ प्रस्तुत हुए। बादशाही सेना बहुत अधिक देख गुरु साहब का साहस भी वैसा ही बढ़ गया और उन्होंने सारे सिपाहियों को वीरोचित वाक्यों से उत्साहित कर युद्धार्थ सन्नद्ध किया। शत्रुओं ने आते ही आनंदगढ़ पर गोले बरसाने आरंभ किए जो ओलों की तरह किले पर गिरने लगे। इधर से भी इसका यथोपयुक्त जवाब दिया जाता था। पर बहुत कुछ सोच-समझकर मुगलों की तरह फुकंत यहाँ जारी न थी। जब अच्छी तरह जाँच लिया जाता था कि इस लक्ष्य से शत्रुओं की भारी हानी होगी तभी तोप दागी जाती थी, जिससे शत्रुओं में हलचल मच जाती थी। तोप दागती हुई जब मुगल सेना किले के बहुत पास पहुँच जाती तो एक बार ही किले पर से वह गोले-गोली और तीरों की वर्षा होती

कि फिर उसे हजारों कदम पीछे हट जाना पड़ता था, सो भी भारी हानि के साथ। कभी गुरु साहब के अव्यर्थ शर-संधान से बड़े बड़े मुगल सरदार अकस्मात् घोड़े की पीठ पर से गिर-कर सीधे यमलोक का मार्ग लेते थे, मानों आकाश से वज्र-पात हुआ हो। कुछ पता ही नहीं लगता था कि कहाँ से सन-सनाता हुआ तीर आया और उनका काम तमाम कर शांत हुआ। दिन भर तों यों ही युद्ध होता रहता और रात्रि को जब मौका पाते गुरु साहब किले से बाहर निकलकर मुसल-मानी सेना पर छापा मारते थे। पर बार बार के अनुभव से मुगल लोग अब विशेष सावधान हो गए और वे रात्रि में कड़ा पहरा रखते तथा वरदी पहने और हाथ में बंदूक लिए ही सोते थे। ऐसा शत्रु भी अब तक कम मिला होगा जिसके भय से रात्रि को भी चैन न था। दिन भर के विश्राम के बाद रात को भी बेखटके आँख नहीं लग पाती थी। कब वज्र ऐसा गोविंदसिंह आ पड़ेगा, इसी खटके में सबेरा हो जाता था। इसी तरह लड़ते-लड़ाते और सोते-जागते कई सप्ताह व्यतीत हो गए। बहुत सी बादशाही सेना मारी गई, घायल हुई और शेष बहुत थकित हो गई। अब लड़ना छोड़-कर वह केवल किले को घेरकर बैठी रही। एक चींटी के निकलने के लिये भी इन्होंने कोई मार्ग नहीं छोड़ा। जिधर देखो, आनंदगढ़ के चारों तरफ कई कोस तक मुसलमानी सेना का पड़ाव जमा हुआ था। किले से यदि एक पंछी भी उड़कर जाता तो गोली का निशाना बना दिया जाता था। तात्पर्य्य यह कि आनंदगढ़ पूरी तरह से अवरुद्ध हो गया। इधर सिक्खों का भी हाल सुनिए। पहले तो कई रोज ये लोग खूब जोम से लड़े। कई बार उन्होंने मुसलमानों को

किले की दीवारों के नीचे से, बड़ी हानि के साथ, भगा दिया जैसा कि पहले लिखा जा चुका है। लड़ते लड़ते जब कई सप्ताह व्यतीत हो गए तो ये लोग कुछ उकता गए। इधर पंद्रह-बीस हजार सेना के उपयुक्त खाद्य द्रव्य का आनंदगढ़ ऐसे किले में दो सप्ताह से अधिक काल तक का संचित रखना असंभव था, सो सब चुक चला। बाहर से रात्रि के समय में भी छिपाकर जब कुछ भी रसद-पानी भीतर लाने की चेष्टा की गई, वह शत्रुओं की तेज निगाह से बच न सकी और लूट ली गई। कई रोज तक केवल भाजी तरकारी और सूखे चने चबाकर भी हमारे गुरुभक्त सिक्ख जवान डटे रहे। जब यह भी नहीं रहा तो दो एक रोज केवल पानी ही पर गुजारा किया गया। उधर हजारों वीर घायल भी पड़े थे, जिनकी सेवा-शुश्रूषा और पथ्य-पानी की भी परम आवश्यकता थी। यह सब अवस्था देखकर सिक्ख लोग घबराने लगे और गुरु साहब से किला छोड़ने को कहने लगे। इसी बीच में मुगल सरदारों ने भी जो घेरा डाले डाले उकता गए थे, गुरु गोविंदसिंह के पास एक पत्र भेजा कि यदि आप चुपचाप निरस्त्र होकर किला छोड़कर चले जायँ तो हम लोग किले का मुहासरा छोड़ देंगे और आपको वे रोक-टोक जाने देंगे। इस पत्र को पा सारे सिक्ख जवान एक स्वर से गुरु साहब को किला छोड़ने के लिये कहने लगे। गुरु साहब इस आपदा से तनिक भी नहीं घबराए। उन्होंने सबको शांतिपूर्वक उत्तर दिया—"भाइयो, आप लोग घबरायँ नहीं। शत्रुओं की बात पर विश्वास कर अपना नाश न करें। मुगल लोग भी बहुत थक गए हैं। अब यही मौका है कि एकाएक निकलकर उन पर बड़ी प्रबलता के साथ छापा मारा जाय। इस आक्रमण को वे लोग

कदापि अबकी बार बरदाश्त नहीं कर सकेंगे और वे परास्त होकर भाग निकलेंगे। निरस्त्र होकर बाहर जाना तथा शत्रुओं की बात का विश्वास करना नीति के, और मेरी समझ के भी, सर्वथा प्रतिकूल है। अब की बार रात्रि को धोखे से छापा मारना चाहिए।

शत्रुओं की बातों के परीक्षार्थ गुरु साहब ने बड़े बड़े काठ के संदूकों में पुराने जूते, लत्ते और कंकड़-पत्थर भरवाकर, बड़े बड़े ताले लगवाकर, उन्हें बाहर भेज दिया। जब मुगलों ने देखा कि गोविंदसिंह का माल-मता बाहर जा रहा है, तो वे एक बार ही उस पर टूट पड़े और उन्होंने उसे लूट लिया; पर खोलकर लत्ता-चीथड़ा और रोड़े-कंकड़ देख वे बड़े लज्जित हुए। गुरु साहब ने सब सिक्खों को बुलाकर कहा—"देखो शत्रुओं के दिल में फरेब है। बाहर निकलते ही हम लोगों का माल-मता लूटकर और हमें निरस्त्र पा ये लोग मार डालेंगे। इसलिये थोड़ा और धैर्य धरो; मैं शीघ्र ही भोजन का कुछ उपाय सोचता हूँ।" पर सिक्खों ने कहा कि मैदान में लड़कर मरने की अपेक्षा किले में भूखे प्यासे सड़ना अच्छा नहीं, हम लोग सशस्त्र बाहर होंगे और लड़ते-भिड़ते अपना रास्ता लेंगे। गुरु साहब ने फिर भी कहा कि यदि भीतर रहोगे तो अब भी कई दिवस शत्रुओं को हैरान कर सकते हो; पर सिक्खों ने एक न मानी और क्षुधा-तृषा से आतुर बाहर निकलने के लिये वे जिद्द करने लगे। तब तो गुरु साहब ने झुँझलाकर कहा—"यदि तुम लोग हमारी आज्ञा ही नहीं मानते तो फिर हमारा तुम्हारा गुरु शिष्य का संबंध कैसा? जिसे बाहर जाना हो, इस प्रतिज्ञापत्र पर दस्तखत करता जाय कि आज से हमारा तुम्हारा गुरु-शिष्य का नाता

टूट गया।" भूखी-प्यासी सेना ने यह स्वीकार किया और बहुत से लोग उस प्रतिज्ञापत्र पर दस्तखत करके बाहर चले गए; केवल गुरु के पचास सच्चे भक्त अब भी गुरु साहब के साथ रहे। ये लोग गुरु साहब के लिये भूखे-प्यासे पानी के लिये तरस तरसकर मरने को तैयार थे; पर गुरु साहब का संग छोड़ने में राजी नहीं थे। आप चाहे इन्हें अंधविश्वासी कहें; पर ऐसे ही दृढ़ आत्मा के पुरुषों की कीर्ति संसार में गाई जाती है। साधारण वृत्ति के लोग तो संसार में भरे पड़े हैं। गुरु साहब ने जब देखा कि सब लोग छँटकर चल दिए और केवल पचास वीर रह गए हैं तो उन्होंने कहा—"धन्य है वीरो! धन्य हो तुम और धन्य हैं तुम्हारी माताएँ। धीरज धरो, मैं तुम्हें भूखे-प्यासे मरने न दूँगा। तुम उस मान्य और अमर राज्य के अधिकारी होगे, जिसका अधिकारी पृथ्वी पर विरला ही कोई हुआ होगा।" यह कहकर आधी रात के समय, अपनी माता स्त्री पुत्रों के साथ, गुरु साहब किले के बाहर निकले। इन्हीं पचास वीरों का उन्होंने एक सूचीव्यूह रचा जिसके मुख पर स्वयं गुरु साहब, बीच में माता-बच्चे और पीछे सिक्ख जवान थे। अँधेरी रात में मुगलों ने इन्हें भागते देखा; पर गुरु साहब के अव्यर्थ शर-संधानों ने इन्हें दूर ही रखा। जो आगे आता, गुरु साहब के तीरों से निश्चय मृत्यु को प्राप्त होता था। एक स्थान पर अवसर पा मुगलों ने उन्हें बिल्कुल घेर लिया और सूचीव्यूह भंग हो गया। कई सिक्ख जवानों के मारे जाने से गुरु साहब अपने तीन पुत्रों के साथ अलग पड़ गए और उनके दो छोटे पुत्र और माता अलग हो गए जिनकी डोली कई सिक्ख योद्धा बड़ी फुर्ती से बचाकर दूर ले गए। संग में जो एक ब्राह्मण था

उसके सपुर्द कर आप गुरु साहब की खोज में पीछे वापस आए। यहाँ कोई न था, कई सिक्ख मारे जा चुके थे और गुरु साहब शत्रुओं के सिर पर से घोड़ी उछालकर एक ओर निकल गए थे। संग के कई सिक्ख सवार और गुरु साहब के तीनों लड़के भी थे। इन लोगों के साथ रातोरात घोड़ा दौड़ाते चमकौड़ नामक ग्राम में, जहाँ उनका एक छोटा सा किला था और जिसमें करीब पाँच सौ के सिक्ख सेना भी थी, जाकर उन्होंने विश्राम लिया। इधर सिक्ख लोग भी भटकते हुए गुरु साहब से जा मिले। अब मुगल सेना वेखटके आनंदपुर में जा घुसी। रसद-पानी तो कुछ था ही नहीं, तोपें सब भी गुरु साहब ने जाते समय बेकाम करवा दी थीं। रत्न-जवाहिर भी जो कुछ था, कुछ गुरु साहब की माता और कुछ वे स्वयं छिपाकर संग लेते गए थे। इसलिये लुटेरों की कुछ इच्छा पूर्ण न हुई। साधारण बर्तन भाँडे, गृह-सज्जा की सामग्री, कपड़े-लत्ते और संदूक-पिटारे या सूखी बारूद तथा टूटे-फूटे अस्त्र-शस्त्र यही सब उन लोगों के हाथ लगा। इतनी कड़ी लड़ाई के बाद कुछ माल भी हाथ नहीं आया और न सब उत्पातों की जड़ गोविंदसिंह मारा ही गया, न पकड़ा गया, यह देखकर मुगल सरदारों और पंजाबी सूबों ने मारे क्रोध के दाँत पीसना आरंभ किया। बादशाह को क्या संवाद भेजेंगे कि महीना भर तक हजारों सेना कटवाकर उजाड़ किला दखल किया। गोविंदसिंह या उसके परिवार का पता नहीं है। निश्चय शाहंशाह क्रोध में आकर हम लोगों को कत्ल करवा डालेगा। अब तो यही पता लगाना चाहिए कि हम लोगों की आँखों में धूल डालकर गोविंदसिंह कहाँ छिपा है। आपस में यही सलाह कर इन लोगों ने पता

लगाते लगाते चमकौड़ के किले को जहाँ गुरु साहब छिपे थे, आ घेरा। यह किला भी घिर गया; पर यहाँ भी भीतर से सिक्ख जवानों ने बड़ी सरगरमी से युद्ध जारी रखा। जब देखा कि हम लोगों की संख्या बहुत ही थोड़ी रह गई है तो गुरु साहब ने कुछ देर तक लड़ाई बंद करके यह युक्ति सोची कि हम लोगों में से अच्छे अच्छे बहादुर निशानेबाज बाहर जायँ और ताक ताककर मुगल सेनापतियों का संहार करें। मरना तो है ही; फिर भीतर पड़े पड़े मरने की अपेक्षा बाहर मैदान ही में मरेंगे। अभी यह सलाह हो ही रही थी कि गुरु साहब का बड़ा लड़का अजीतसिंह, जिसकी उम्र केवल अठारह वर्ष की थी, हाथ जोड़कर सामने आया और बोला—"पिताजी, मेरे दिल में बड़ा हौसला है कि एक बार जी खोलकर यवनों को अपनी तेज तलवार का मजा चखाऊँ। किले के भीतर न जाने कब शत्रु की किसी गोली या तीर से मृत्यु हो जाय; इसलिये यदि आपकी आज्ञा हो तो जाकर मन का हौसला तो निकाल लूँ। फिर मरना तो एक दिन है ही, आज ही क्या और दो दिन बाद ही क्या।" गुरु साहब अपने पुत्र की यह वीरोचित वाणी सुन बहुत प्रसन्न हुए और बोले—"धन्य हो पुत्र ! यह तो हम क्षत्रियों का स्वाभाविक धर्म है ! बड़े आनंद की बात है। तुम्हें मैं सहर्ष आज्ञा देता हूँ कि बाहर जाकर वीर-गति को प्राप्त हो।" यह कहकर उन्होंने पुत्र के सिर पर हाथ फेरा और पीठ ठोंक कर कई जवानों के साथ उसे बाहर भेज दिया। यह सिंह का बालक बाहर निकलते ही, वास्तव में सिंह-सुवन ही की तरह, शत्रुओं पर बड़ी तेजी से झपटा और इसकी तलवार बिजली सी रणभूमि में सर्वसंहार करती हुई नाचने लगी।

सिर पर से, दाहिने बाएँ गोलियाँ सनसनाती हुई चली जा रही हैं. पर इसका कुछ ध्यान नहीं, बिजली सा झपटता हुआ वह आगे बढ़ा जा रहा है। यह देखो, वह एक मुगल सरदार की खोपड़ी पर जा पहुँचा और एक ही बार में उसने उसको यमलोक भेज दिया। बिजली सी तलवार चमककर दूसरे के सिर पर गिरी और वह एक आह करके भूमि पर नजर आया। तीसरी बेर एक सवार का काम तमाम कर चौथी बेर तलवार उठी ही थी कि एक बार ही पाँच सात गोलियाँ आकर इस किशोर वीर को लगीं और "वाह गुरु" इतना ही कहकर वह "अकाल पुरुष" के चरणों में जा विराजा। ये तीनों कुँवर, जो अजीतसिंह के हाथ से मारे गए, मुगलों के बड़े बड़े सरदार थे। मुसलमानी सेना चकित थी कि यह कौन था जिसने आकर इतनी हलचल मचा दी। गुरु साहब जो कि प्यारे कुमार की वीरता किले पर से देख रहे थे, उससे बड़े संतुष्ट हुए और 'धन्य बेटा ! धन्य !!' यही बार बार बोले। शोक या दुःख का कहीं चिह्न भी न था। अब तो अजीतसिंह का छोटा भाई जुझारसिंह, जिसकी उम्र केवल चौदह वर्ष की थी, उठकर बोला—"पिताजी, क्या भाई साहब की तरह मैं धन्य धन्य नहीं हो सकता?" गुरुजी ने कहा—"क्यों नहीं बेटा, अवश्य हो सकते हो।" तब तो गुरु जी मुझे बाहर जाने की आज्ञा दीजिए।" "अच्छा बेटा, इससे बढ़कर और क्या होगा? जाओ और क्षत्राणी का दूध पिया है, यह सिद्ध कर दिखाओ।" यह सुनकर जुझार बोला—"पिताजी बडी प्यास लगी है, थोड़ा सा पानी हो तो दीजिए।" गोविंदसिंहजी बोले—"बेटा पानी तुम्हारे भैया के पास है, उसके पास जाकर पीना।" यह सुनकर वह वीर बालक फिर

भीतर न ठहरा और तलवार घुमाता हुआ बाहर शत्रुओं पर जा टूटा। मुगलों ने जब इस किशोर वय के बालक को तलवार घुमाते हुए आते देखा तो समझा कि शायद किसी बालक को उन्माद हो गया है जो यों सीधा तलवार घुमाता दौड़ता आ रहा है। पर उसने आकर जब दाहिने बाएँ दो चार के सिर उड़ा दिए तब तो सब चौककर सँभल गए और उस पर वार करने लगे। बालक जुझारसिंह भी तमक तमककर तलवार चला रहा था। आगे पीछे वह कुछ भी नहीं देखता था कि कौन है या क्या है, केवल बढ़कर हाथ मारने से उसे काम था। शत्रु की एक तलवार पड़ी और एक हाथ कट गया। रक्त की धारा बह निकली; पर उसका ध्यान किसे है! दहिने हाथ में तलवार नाच रही है। दूसरी चोट कंधे पर लगी, तीसरी मस्तक पर, तब गश खाकर बालक भूमि पर गिर पड़ा और थोड़ी ही देर में 'वीर-लोक' में जा विराजा। पर तलवार दृढ़ मुट्ठी में बंद थी और मुख पर दृढ़ता का भाव ज्यों का त्यों विद्यमान था। क्यों न हो! एक तो क्षत्रिय और फिर प्रतापी तपस्वी गुरु गोविंदसिंह का वीर्य्य! उसका भी इतना प्रभाव न होता? अस्तु ये दोनों वीर बालक जब शांत हुए तो संध्या हो गई थी। गुरु साहब के चेहरे पर कोई उद्वेग नहीं था, कोई चिंता न थी। प्रफुल्लमुख आनंदचित्त सब शिष्यों को सामने बैठाकर, जो इस समय करीब चार सौ के थे, वे बोले—"भाइयो, दोनों कुँवर तो वीर-गति को प्राप्त हो चुके, अब कल हम लोगों की बारी है। प्रातःकाल बाहर निकलकर शत्रुओं पर एक बार ही टूटेंगे और उन्हें भी एक बार बता देंगे कि क्षत्रिय पंजाबी वीर, भीम और अर्जुन की संतान, किस तरह युद्ध करते और मृत्यु को तुच्छ समझते हैं। इससे बढ़कर और

कौन सा अवसर होगा, जब कि दोनों कुमारों ने मार्ग दिखा दिया है। कल सवेरे हम भी उसी मार्ग के अनुगामी होंगे। मैंने जो बीज बो दिया है, भारत की हिंदू जाति की नसों में जो उत्साह का रक्त संचारित कर दिया है, वह समय पाकर अपना पूरा रंग लाएगा। इसकी मुझे कुछ चिंता नहीं कि अब मैं आज मरूँ या कल।" गुरु साहब की यह उदास और दृढ़ता-सूचक बानी सुनकर उपस्थित शिष्यमंडली कुछ विचलित हुई और उनमें से एक प्रवीण गुरुभक्त शिष्य उठकर हाथ जोड़कर बोला "महाराज! यों तो आप जो आज्ञा करेंगे, वह हम सब लोगों को शिरोधार्य्य है; पर इस समय आपके प्राण देने से सिक्ख जाति का बड़ा अपकार होगा। अभी यह पौधा बिल्कुल नरम है। अभी इसे एक प्रवीण माली की बड़ी आवश्यकता है, नहीं तो प्रबल झंझा-वात से समूल उत्पाटित होकर यह नाश को प्राप्त होगा। मुगलों का बल कुछ ऐसा नहीं है जिसका मुकाबला हम लोग नहीं कर सकेंगे। इसकी परीक्षा भी हो चुकी है। यद्यपि इस समय बड़ा संकट आ पड़ा है; पर यदि आप कृपा कर इसे भी सम्हाल जायँ तो बड़ा काम होगा।" गुरु साहब बोले-"तुम्हारी सलाह मेरे चित्त में बैठती है; पर अब बाहर निकल शत्रुओं से बचकर जाना भी तो दुर्घट है।" वह शिष्य बोला—"इसका उपाय अर्धरात्रि को मैं कर दूँगा, आप निश्चिंत रहें; क्योंकि जहाँ आपके रहने का संवाद पहुँचेगा वहीं सहस्रों लक्षों शिष्य-मंडली उपस्थित हो जायगी और आप अपना वीरव्रत पालन-कर धर्म की रक्षा कर सकेंगे। प्राण दे देने से तो वह वह काम जो आपने उठाया है पूरा नहीं हो सकेगा। हम लोग भले ही मर जायँ पर खालसा धर्म के मंगलार्थ आपकी शरीर-रक्षा

नितांत प्रयोजनीय है।"

गुरु साहब ने शिष्यों का यह प्रस्ताव स्वीकार किया और जब आधी रात हुई, जब चारों ओर अंधकार का राज्य हो गया उस समय वही शिष्य जिसने गुरु साहब को मार्ग साफ कर देने का वचन दिया था, थोड़े से सिपाहियों को लेकर बाहर निकला और जहाँ बादशाही सेना के खेमे गड़े हुए थे, उसी के किनारे यह चिल्लाता हुआ भागने लगा कि "गोविंद-सिंह भागा जाता है, पकड़ो पकड़ो।" अँधेरी रात में सारे मुसलमान सिपाही अकचकाकर उठ बैठे और इस गोलमाल को अपने सिपाहियों का शब्द समझ उधर ही को चढ़ दौड़े जिधर वह सिक्ख भागा था। एक के पीछे एक सारी सेना उठ उठकर उसी ओर भागने लगी। इधर मैदान साफ हो गया। अब तो गुरु साहब बाहर निकले और थोड़े से साथियों को लेकर मालवा प्रांत की ओर उन्होंने घोड़ा दौड़ा दिया। प्रातःकाल तक वे खोड़ी नामक ग्राम में पहुँच गए। वहाँ दो ग्वाले भैंस चरा रहे थे। वे गुरु साहब को पहचानकर हल्ला मचाने लगे। गुरु साहब ने उनकी ओर कुछ अशर्फियाँ फेंक दीं। उन्हें उठाकर वे फिर भी जब हल्ला करते रहे तब तो अपने एक हाथ की दूरी पर इन्होंने और कुछ अशर्फियाँ फेंक दीं। अब तो वे कृषक लोभवश अशरफी उठाने के लिये गुरु साहब के बहुत निकट चले आए। गुरु साहब, जो अपनी घात में थे, लपककर उनकी खोपड़ी पर जा पहुँचे और एक ही वार में उन्होंने दोनों के सिर काट डाले। तलवार म्यान में रख ये वहाँ से दौड़ा-दौड़ रवाना हुए; क्योंकि पीछे दूर से धूल उड़ती दिखाई दे रही थी, जिससे मुगल सवारों के पीछा करने का अनुमान होता था। दौड़ा-दौड़ जब अच्छे प्रकार

सवेरा होते होते एक दूसरे ग्राम में ये पहुँचे तो वहाँ बादशाही सिपाहियों को इन्होंने इधर-उधर घूमते पाया। उनकी निगाह बचा ये एक घने जंगल में प्रविष्ट हुए और एक शमी वृक्ष के नीचे विश्राम करने लगे। इस स्थान पर इस घटना के स्मारक में "जंडा साहब" के नाम से एक गुरुद्वारा बना हुआ अब तक मौजूद है। गुरु साहब बहुत थक गए थे और क्षुधा-पिपासा से भी बहुत व्याकुल थे; इसलिये दोपहर तक वे उसी वृक्ष के नीचे ठहरे और उन्होंने कुछ खा-पीकर थकावट मिटाई। मुगल सिपाही हल्ला मचाते हुए चारों ओर घूम रहे थे। घना जंगल झाड़ियों से ऐसा घिरा हुआ था कि दो कदम आगे जाने पर भी काँटे चुभते और शरीर छिलता था। इस घने जंगल में मुगलों को तो गुरु साहब का कुछ पता नहीं लगा. इधर कुछ आराम करने के बाद गुरु साहब जब मार्ग खोजने लगे तो मार्ग ही न मिले। चारों ओर घनी झाड़ियाँ थीं। रास्ता खोजते खोजते संध्या हो गई; पर कुछ सफलता नहीं हुई। क्या करते, रात भी उसी एक झाड़ी के नीचे काटनी पड़ी। घोर बियावान जंगल, झाड़ी और काँटों से भरा हुआ, हिंसक पशुओं का भय भी कम न था, पर वे विवश थे। वहीं रात्रि बितानी पड़ी। रात भर जागते हुए भरी बंदूक लिए वे बैठे रहे। ज्यों त्यों कर सवेरा हुआ। इस स्थान पर भी "झाड़ी साहब" के नाम से बना हुआ एक गुरुद्वारा विद्यमान है। प्रातःकाल होने पर ज्यों त्यों कर बड़ी कठिनाई से घोर जंगल में मार्ग मिला। वहाँ से निकलकर वे मछवाड़ा नामक कसबे में जा पहुँचे। यहाँ एक बाग में, जो 'रुहेला खाँ' के बाग के नाम से विख्यात था, इन्होंने डेरा डाला। थोड़ी देर में दोनों पठान, जो इस बाग के स्वामी थे,

यहाँ टहलने आए और उन्होंने गुरु साहब को देखते ही पहचान लिया। कारण यह था कि किसी काल में गुरु साहब के दर्बार में ये लोग घोड़ा बेंचने गए थे। अब गुरु साहब को फटे वस्त्र धारण किए दुरवस्था में देखकर इन्हें बड़ा आश्चर्य्य हुआ। ये दोनों पठान बड़े सज्जन रईस थे; इस कारण गुरु साहब की दुरवस्था का समाचार सुन इनका जी हिल गया और इन्होंने उन्हें अपने घर ले जाकर बड़ी खातिर से अपने पास रखा। खोजते खोजते कई मुख्य शिष्य लोग भी यहीं गुरु साहब के पास आ पहुँचे। उधर बादशाही सिपाही भी इनकी खोज में नगर के चारों ओर घूम रहे थे। ऐसी अवस्था में नगर से बाहर जाना विपत्ति से खाली न था और अधिक दिन तक यहाँ रहना भी विपज्जनक था। गुरु साहब ने यह स्थान छोड़ देना ही उचित समझा और अपने फारसी के अध्यापक काजी मीर मुहम्मद और एक सेवक गुलाबराय को बुलवा एक युक्ति निकाली। तीनों ने मिलकर मुसलमान मुल्लाओं के नीले वस्त्र धारण कर लिए और मुसल· मानों का पूरा वेष बना लिया। साथ में उस बाग के स्वामी दोनों पठान भी हो लिए। उन दिनों पंजाब में यह चाल थी कि मुसलमान लोग अपने पीरों को खटिया पर बैठाकर अपने कंधे पर उठाकर बड़े सम्मान से एक ग्राम से दूसरे ग्राम में पहुँचा आया करते थे। यहाँ भी यही युक्ति की गई और सब शिष्यों ने मुसलमानी वेष बना, गुरु साहब को खटिया पर बैठाया और अपने कंधे पर उठाकर उन्हें वे ले चले। जब कोई पूछता तो कहते कि "ये हमारे पीर हैं।" जब मार्ग में बादशाही सेना के सिपाही मिले तो उन्हें भी यही उत्तर दिया गया। उन्होंने एक साधारण मुसलमान पीर समझ इन्हें

बे रोक-टोक जाने दिया। यों ही चलते चलते घनगाली नामक ग्राम में वे पहुँचे। वहाँ एक बादशाही मिस्त्री झंडा नाम का रहता था। यह अस्त्रों के बनाने में बड़ा चतुर था। गुरुजी ने यहाँ उससे कई नवीन उत्तम अस्त्र-शस्त्र मोल लिए तथा उसने अपनी तरफ से भी गुरु साहब को एक कमान, बाईस तीर, एक दो-कब्जी तलवार और दो-नली पिस्तौल भेंट की।

यहाँ कुछ दिन रहकर गुरु साहब आगे बढ़े। अब की बार मार्ग में पुनः बादशाही सेना ने रोक टोक की। साथियों ने पूर्ववत् उत्तर दिया कि ये हमारे पीर हैं, मुसलमान हैं। इस सेना का जो अफसर था उसे कुछ संदेह हुआ और उसने कहा कि "यदि मुसलमान हैं, और पीर हैं तो मेहरबानी करके मेरे दस्तरखान को सर्फराज करें"—अर्थात् मेरे संग खाना खाएँ। अब तो बड़ी कठिन समस्या का सामना पड़ा। हिंदू विश्वास के अनुसार यवन-स्पृष्ट अन्न खाने से मनुष्य पतित हो जाता है; पर गुरु साहब प्रथम तो इस बात पर विश्वास नहीं करते थे और जहाँ प्राण जाने का खटका है, ऐसी जगह पर यदि यवन-स्पृष्ट अन्न ग्रहण कर भी लिया जाय तो उसके प्रायश्चित्त का विधान हिंदू शास्त्र में है, ऐसा समझकर उन्होंने इस अवसर पर मुसलमान का स्पर्श किया हुआ अन्न ग्रहण किया और एक दस्तरखान पर बैठकर मुसलमान सेनापति के संग खाना खाया। पर अपने पुत्रों को आँख के सामने मरते देखकर, सम्मुख युद्ध में प्राण देने की इच्छा रखते हुए भी, जब उन्होंने शिष्यों के समझाने से ही केवल इस नश्वर शरीर को कुछ दिन और रखना उचित समझा था तो यह कब संभव था कि उन्होंने प्राणों के भय से मुसलमान का छुवा खाना खा लिया। शरीर-रक्षा तो उसी

महान् उद्देश्य के लिये करनी थी, जिसके लिये सम्मुख युद्ध छोड़कर छिपकर भागे थे। फिर इस मौके पर एक सामान्य बात के लिये गुरु साहब वैसी ही मूर्खता करते तो यों बिना युद्ध किए, बिना दो एक शत्रुओं को मारे, घलुवे में घातक के हाथ से मारे जाते। यदि घातक के हाथ ही मरना इनका उद्देश्य होता तो ये अपने पूर्वजों से भिन्न ढंग पर अपनी कार्य-प्रणाली क्यों चलाते? उन्हें तो वीरता और भारतवर्ष की राज-नैतिक अवस्था का रूप हिंदू जाति के सामने रखना था और ऐसे कार्य्य के व्रती को 'अवसर पड़ने पर यवन-स्पृष्ट अन्न ग्रहण करना चाहिए था या नहीं' इसका विचार विवेकी जन स्वयं कर सकते हैं। इस समय उनके सामने दो प्रश्न उपस्थित थे "या तो यवन का छुवा खाकर जान बचाएँ और भारतवर्ष के उत्थान और खालसा धर्म्म की रक्षा के लिये शरीर कायम रखें या मुसलमान का छुआ अन्न खाने से इन्कार करके घातक के हाथ से प्राण गवाएँ और भारत के उद्धार तथा खालसा धर्म्म की रक्षा से हाथ धो बैठें।" पाठक बतलाएँ ऐसे अवसर पर क्या करना उचित है और जब कि इस 'आपद्धर्म' का प्रायश्चित्त भी हो सकता है। गुरु साहब ने पीछे से कुछ प्रायश्चित्त करके ब्राह्मणों की मुट्ठी गरम की थी या नहीं, यह इतिहास में कहीं लिखा नहीं मिलता; पर हाँ, केवल एक इसी काम से हम श्रीगुरु गोविंदसिंहजी को अपने सिद्धांतों से गिरा हुआ या आत्मा का निर्बल मनुष्य नहीं कह सकते, भले ही आजकल के कट्टर हिंदू लोग ऐसा कहें, जिन्हें कभी ऐसी राजनीतिक समस्या से काम नहीं पड़ा है। अस्तु, गुरु साहब के खाना खा लेने से उस सेनानायक को निश्चय हो गया कि ये वास्तव में मुसलमानों के पीर हैं और उसने बे रोकटोक

उन्हें वहाँ से जाने दिया। यहाँ से रवाना होकर, आगे चलकर, गुरुजी कसबा हेहर में महंत कृपालदास के यहाँ पहुँचे। उसने बादशाह के भय से गुरु साहब को अपने पास टिकने न दिया। गुरु साहब केवल इतना ही कहकर कि "तुम्हारे दिन भी निकट हैं" आगे बढ़े और वास्तव में हुआ भी ऐसा ही। थोड़े दिनों के बाद उसी इलाके में एक बड़ा डाका पड़ा और इसके संबंध में. महंत साहब की साजिश है इसी अपराध में, महंतजी को फाँसी हो गई। करनी का फल हाथों-हाथ मिल गया। यहाँ से रवाना होकर गुरु साहब स्थान रायकोट में पहुँचे। वहाँ के रईस ने इनको बड़ी खातिर से अपने पास टिकाया और इनकी बहुत कुछ सेवा-शुश्रूषा की। यहाँ पर कुछ दिन ठहरकर गुरु साहब ने थकावट मिटाई। अभी ये यहाँ टिके ही थे कि एक सिक्ख सौदागर इनके दर्शनों को आया और उसने इनको एक उम्दा अरबी घोड़ा भेंट में दिया। रायकोट के रईस ने भी एक घोड़ा और कई अस्त्र भेंट किए। यहीं पर बहुत से भागे हुए सिक्ख भी इनसे आ मिले जिनकी जुबानी इन्हें एक बड़ा ही दुःखद और हृदय-विदारक समाचार सुनना पड़ा, जिसका खुलासा हाल आगे के अध्याय में वर्णन किया जायगा।

नवाँ अध्याय

दो कुमारों की अद्भुत धर्म्मबलि

पाठकों को याद होगा कि किला आनंदगढ़ छोड़ते समय संग में गुरु साहब की माता थीं और उनके संग नौ और सात वर्ष के गुरु साहब के दो सुकुमार पुत्र भी थे। बाहर निकलने पर जब मुगल सेना ने उनपर एकाएक आक्रमण कर दिया था तो उस समय उनकी माता और वे दोनों कुमार उनसे अलग हो गए और कुछ सिक्ख लोग एक ब्राह्मण के साथ, जो उनके घराने का एक पुराना रसोइया था, उनकी डोली को बचाकर बड़ी दूर ले गए और उसी प्राचीन सेवक की हिफाजत में उसे छोड़कर वे गुरु साहब की टोह में लौट आए थे। अँधेरी रात, बियावान सूनसान जंगल, कहीं एक चिड़िया के पूत का चिह्न तक न था। ऐसे समय चार कहार गुरु साहब की माता की डोली उठाए लिए जा रहे थे। संग में नौ और सात वर्ष के दो बालक और वही रसोइया ब्राह्मण था। कहाँ जायँ, क्या करें, कुछ भी निश्चय न था। बालकों की दादी ने ब्राह्मण देवता से पूछा "महाराज, हम लोग कहाँ जा रहे हैं ?" ब्राह्मण ने उत्तर दिया—"कहाँ, सो तो कुछ निश्चय नहीं है। पर मैं समझता हूँ कि जब तक कुछ निश्चय न हो या गुरु साहब के पास से कोई संवाद न आवे आप मेरे डेरे पर आनंदपूर्वक निवास कर सकती हैं, किसी बात की तकलीफ नहीं होगी। मैं गुरु महाराज के घर का पुराना सेवक हूँ और उनके पिता के समय से आप लोगों की टहल कर रहा हूँ। मुझपर विश्वास करने में आपको कुछ आगा-पीछा नहीं

करना चाहिए।" इसी तरह समझाता-बुझाता वह ब्राह्मण इन लोगों को अपने घर ले आया। बहुत दूर के थके हुए यात्रियों ने कुछ खा-पीकर विश्राम किया। दो तीन दिवस तक ये लोग आनंदपूर्वक यहीं रहे; पर तीसरे दिवस ब्राह्मण देवता की नियत में फर्क आ गया। बात यह थी कि गुरु साहब की माता के पास एक जवाहिरात की पेटी थी, जिसमें बहुमूल्य रत्न आभूषण थे। यह कई लाख का माल था। माताजी उसे रात को सिरहाने रखकर सोती थीं। ब्राह्मण देवता की दृष्टि इस संदूकची पर पड़ गई थी। एक दिन रात को देवताजी ने वह संदूकची माताजी के सिरहाने से सरका कर गायब कर दी और अपने घर में कहीं छिपाकर रख दी। एक निस्सहाय अबला क्या कर सकती है! यह माल मैं सहज ही में डकार जाऊँगा, ऐसी भावना कर मन के लड्डू खाते हुए देवताजी रात भर सुख के स्वप्न देखते रहे। अहो सुवर्ण! तेरी महिमा भी धन्य है!! बड़े बड़े सत्पुरुषों तक को तूने पतित कर दिया है!!! जब सवेरा हुआ और माताजी जागीं और उन्होंने सिरहाने संदूकची न पाई तो वे बड़ी विकल हुईं और इधर-उधर खोजने के उपरांत उन्होंने पहले ब्राह्मण देवता से पूछा। ब्राह्मण देवता बोले—"मैं तो जानता भी नहीं कि आपके पास क्या चीज थी क्या नहीं थी। मुझे आपकी चीजों से क्या वास्ता?" तब तो माताजी और भी विस्मित हुईं और बोलीं—"महाराज, इस कमरे में और तो कभी कोई आता नहीं, बालकों ने कहीं उठाकर फेंकी नहीं; क्योंकि उन्होंने देखी नहीं, फिर यह संदूकची गई कहाँ, यही मुझे बड़ा आश्चर्य है।" अब तो ब्राह्मण देवता एक बार ही झल्लाकर बोले—"तो क्या मैंने ले ली? क्यों न हो, अपनी जान पर खेलकर

आपको और आपके बच्चों को अपने घर लाकर रखा उसका यही फल है ! आज दो पुश्त से आपकी नौकरी कर रहे हैं, कभी एक रत्ती की चीज इधर-उधर नहीं की, आज इस चोरी का लांछन लगा ! ये सब दिन के फेर हैं ! क्या आपको मालूम है कि आप लोगों को अपने घर टिकाकर मैंने कितना भारी जोखिम का काम किया है ? अभी किसी बादशाही कर्म्मचारी को खबर हो जाय तो मेरी आपकी सबकी जान चली जाय !! मैंने इतना जोखिम सहकर आप लोगों को अपने यहाँ आश्रय दिया और उलटे मुझे चोरी का लांछन लगा ! धन्य हो ! अभी इसी समय थाने पर जाकर मैं आप लोगों का पता बता दूँ तो कहो कैसी हो ? बादशाही बागी के स्त्री-पुत्रों की क्या गति होती है, यह भी आपने कभी सोचा है ?" इत्यादि । आखें लालकर ब्राह्मण देवता बक-झक करने लगे । इनके वचनों को सुनकर माताजी बड़ी डरीं और बड़ी विकल हो बोलीं—"महाराज जी, मैंने तो आपको कुछ नहीं कहा । मैं तो केवल यही कहती थी कि यदि आपको उसका कुछ पता हो तो बतला दीजिए या उसकी खोज कर दीजिए । खैर चली गई, जाने दीजिए पुनः उसकी चर्चा करने से कोई प्रयोजन नहीं । आप कृपापूर्वक शांत हों और मुझ अज्ञान अबला से यदि कोई अपराध हो गया हो तो क्षमा करें; क्योंकि इस समय आप ही मेरे रक्षक पिता हैं । आप ही यदि मुझे ऐसा भयभीत कीजिएगा तो मेरा कहाँ ठिकाना लगेगा ।" यह कहकर उन्होंने ब्राह्मण देवता को कुछ शांत किया । वे बड़ी चतुर थीं, उन्होंने ब्राह्मण देवता की भावभंगी से निश्चय समझ लिया कि संदूकची इसी ने चुराई है; पर इस समय कुछ कहने सुनने का अवसर नहीं है, यह सोचकर वे चुप हो रहीं ।

इधर तो माताजी का यह हाल था उधर वह दुष्ट ब्राह्मण मन में यह सोचने लगा कि यदि ये लोग यही रहे तो यह माल मुझे कदापि पच नहीं सकता, एक न एक दिन भेद खुल ही जायगा; इसलिये अच्छा यही है कि शहर कोतवाल को इनकी खबर कर दूँ। फिर ये लोग तो ठिकाने लग जायँगे और मैं आनंद से दिन काटूँगा। ऐसा सोचकर वह नरा-धम फौरन् कोतवाली चला गया और वहाँ जाकर उसने खबर दी—"बादशाही बागी गुरु गोविंदसिंह का परिवार .भाग-कर मेरे यहाँ आ छिपा है। मैंने उन्हें आश्रय तो दे दिया; पर इसी इच्छा से कि उसकी गिरफ्तारी में सुभीता हो। ये लोग, गुरु साहब की माता और उनके दो बच्चे अभी मेरे ही यहाँ हैं। आप जो मुनासिब समझें किजिए। मैं बाद शाही रय्यत होकर नमकहरामी नहीं कर सकता; इसलिये मैंने मौका देखकर खबर कर दी।" यह खबर पा कोतवाल साहब अपने अनुचरों के संग इनके यहाँ आ धमके और गुरुजी की माता और दोनों बालकों को गिरफ्तार कर ले गए। गिर-फ्तार होते ही गुरुजी की माता पहले तो कुछ विस्मित और भयभीत हुईं, फिर जब असली समाचार विदित हुआ तो बड़े दृढ़ स्वर से केवल यही बोलीं कि "गुरु तेगबहादुर की पत्नी और गोविंदसिंह की माता भी मरना जानती है" और कोतवाल से उन्होंने कहा कि "तूने जब हम लोगों को गिर-फ्तार किया है तो इस दुष्ट को भी गिरफ्तार कर। इसने मेरी जवाहिरात की पेटी चुराई है। तलाशी लेने से आपही पता लग जायगा।" कोतवाल ने जब घर की तलाशी ली तो एक अनाज के कुंडे में से एक पेटी भी मिली। ब्राह्मण देवता के भी मुश्कें चढ़ा, माताजी को एक डोली में बैठा और गुरु

साहब के दोनों छोटे बच्चों को पहरे में करके कोतवाल सबको थाने ले आया और वहाँ से सारी रिपोर्ट लिखकर अपने हाकिम सूबा सरहिंद के पास उसने भेज दी। सूबा सरहिंद ने जबाब भेजा कि "फौरन् सवारों के साथ अच्छी तरह हिफाजत में इन लोगों को यहाँ चालान कर दो।" उसी प्रकार कोतवाल ने बारह सवारों की हिफाजत में इन लोगों को सूबा सरहिंद के पास चालान कर दिया। सूबा सरहिंद के पास जब ये लोग पहुँचे तो उसने इन लोगों को एक किले के बुर्ज में टिकाया और क्या करना चाहिए यह वह रात भर सोचता रहा। ब्राह्मण देवता को तो उसने छोड़ दिया और उस जवाहिरात की पेटी में से उम्दा उम्दा माल आप रखकर कुछ कोतवाल को दे दिया। यही वह सूबा सरहिंद था जो गुरु गोविंदसिंह द्वारा कई बार हराया जाकर बड़ा दुःखित हुआ था। अब गुरु साहब के निस्सहाय परिवार को अपने कब्जे में आया जान उसने अपना वैर साधने का अच्छा मौका हाथ आया समझा और दीवान, मुसाहिब काजी इत्यादि को इकट्ठा कर सलाह करने लगा। सबों ने कहा, बहुत अच्छा मौका हाथ लगा है। इस समय गोविंदसिंह के हृदय पर ऐसी चोट पहुँचानी चाहिए कि फिर वह किसी लायक न रहे। पहले तो इन लोगों से दीन इसलाम कबूल करवाना चाहिए। यदि न मानें तो कत्ल करवाना चाहिए। यही शरह की आज्ञा भी है। यही सलाह तय करके उन दोनों बालकों को उसने अपने दर्बार में बुलाया। ये दोनों बालक जब माताजी से पृथक् होने लगे तो पहले तो माताजी ने, जो बड़ी बुद्धिमती थीं, आगे होनेवाली घटना का कुछ कुछ आभास पा, पौत्रों को गले से लगा मुख चूमा और सिर पर हाथ रखकर कहा—"प्यारे

लाल ! कुछ घबराना मत। अपने धर्म्म पर दृढ़ रहना। अकाल पुरुष तुम्हारा रखवारा है।" अब उन्होंने उन बालकों को विदा किया, पर जब दोनों बालक चले गए तो उनका हृदय आँसू नहीं रोक सका। वे बड़ी विकल होकर क्रंदन करने लगीं। फिर यदि बच्चों पर कुछ आपत्ति आवेगी तो निश्चय प्राण दे दूँगी, ऐसी दृढ़ प्रतिज्ञा कर कुछ शांत हो चुपचाप बैठी रहीं ! इधर दोनों बच्चे, जिनमें से बड़ा नौ और छोटा सात वर्ष का था, सूबा सरहिंद के दर्बार में लाए गए। ये दोनों सुकुमार बालक बिलकुल निर्भय निस्संकोच सिंह-सुवनों की तरह इधर उधर देखते हुए दर्बार में सिर ऊँचा किए हुए जा खड़े हुए। इनकी सुकुमार और सुंदर मूर्ति देखकर सबका जी भर आया।

जब ये दोनों बच्चे यों दर्बार में आ खड़े हुए तो सब काजी और सभासदों की राय से सूबा सरहिंद ने बड़े कुमार जोरावरसिंह से पूछा—"क्यों जोरावरसिंह, तुम मुसलमान होना पसंद करते हो ?" जोरावर ने कुछ जवाब न दिया, वह चुपचाप खड़ा रहा। फिर सूबा ने पूछा, —"क्यों, तुमने क्या सुना नहीं, मैंने क्या कहा ?" जोरावर बोला—"क्या कहते हो ?"

सूबा—मैं कहता हूँ कि तुम्हें मुसलमान बनना पड़ेगा, हमारा बादशाही मजहब कबूल करना पड़ेगा।

जोरावर—ऐसा क्यों कहते हो ?

सूबा—हमारी किताब का यही हुक्म है कि जहाँ तक हो और मजहब के लोगों को अपने मजहब में लाना। कहो, क्या कहते हो ? तुम्हें हमारा मजहब मंजूर है ?

जोरावर—हमारी किताब कहती है कि अपना धर्म्म न छोड़ो; इसलिये हमें तो मुसलमान होना मंजूर नहीं है।

सूबा—क्या सचमुच तुम हमारा मजहब कबूल नहीं करोगे ?

जोरावर—हरगिज नहीं करेंगे।

सूबा—देखो, अगर मुसलमान हो जाओगे तो शाहंशाह के दर्बार में तुम्हारी बड़ी इज्जत होगी और तुम्हें वह अपनी बगल में बैठाएगा, बड़ी उम्दा उम्दा पोशाक और जवाहिरात के गहने तुम्हारे बदन पर रहेंगे, हाथी घोड़े, और सैकड़ों गुलाम तुम्हारी तावेदारी में हाजिर रहेंगे, चाहे जितनी खूबसूरत लड़कियों से तुम शादी कर सकोगे। अब विचारकर देखो। क्या इतने मौज का सामान पाकर भी तुम मुसलमान होना नहीं चाहते ?

जोरावर—हमारे गुरु का यही उपदेश है कि "धर्म छोड़कर, यदि स्वर्ग भी मिलता हो तो वह नरक के समान समझना" इसलिये तुम्हारी इस मौज को मैं नरक के समान समझता हूँ।

सूबा—अरे लड़के, तू क्या पागल हो गया है जो बहकी बहकी बातें करता है। मुसलमान नहीं होगा तो क्या जान गवाँवेगा ?

जोरावर—जान क्यों जायगी ?

सूबा—हमारी किताब का यही हुक्म है कि जो मजहब कबूल न करे उसे मार डालना चाहिए।

जोरावर—क्या मुझसे युद्ध करेगा ? ला, दे हाथ में तलवार दे, गुरु का बच्चा युद्ध में जान जाने से नहीं डरता।

सूबा—अरे बच्चा, तू निरा भोला है, युद्ध नहीं करना होगा। जल्लाद की तलवार तुम्हारा सिर काटकर फेंक देगी। सोच और समझ, अगर अपने को इस आफत से बचना चाहता है तो मुसलमान होकर सारे ऐशो-आराम को भोग,

नहीं तो बड़ी दुर्दशा होगी।

जोरावर—'अच्छा, तू मेरे हाथ में तलवार नहीं देगा और योंही मेरा सिर कटवावर मरवा डालेगा ! हाँ, ठीक है, माताजी कहती थीं कि मेरे दादा गुरु तेगबहादुर जी भी योंही मारे गए थे; क्योंकि उन्होंने मुसलमान होना मंजूर नहीं किया था। अरे पापी ! ले सुन ले, मैं उसी गुरु का पोता हूँ ! मैं भी उसी तरह कत्ल होऊँगा, पर मुसलमान नहीं होऊँगा।

सूबा—भोले बच्चे, तेरे सिर पर क्या खप्त सवार है, जरा सी जिद् के सबब जान गँवाता है।

जोरावर—तुम तो समझदार हो, तुमही अपनी जिद् क्यों नहीं छोड़ते और मुझे बरजोरी क्यों मुसलमान बनाया चाहते हो ?

सूबा—अरे नादान ! क्या तुझको नहीं बतलाया गया है कि यह हमारी किताब का हुक्म है।

जोरावर—तो फिर बार बार तू ही मुझसे क्या पूछता है ? क्या मैंने तुझसे नहीं कहा कि हमारी किताब का भी हुक्म यही है और गुरु की शिक्षा भी यही है कि चाहे जो हो, चाहे कितने ही कष्ट से क्यों न मरना पड़े "धर्म्म नहीं छोड़ना"।

सूबा—क्यों नाहक मरता है ?

जोरावर—नाहक तो तेरे ऐसे अधर्म्मी मरेंगे; मैं तो अपने धर्म्म के लिये, सत्य श्री अकाल पुरुष के नाम पर मरता हूँ। यह नाहक नहीं, ऐसे ही मरने के लिये मुझे गुरु का उपदेश भी है। मेरे कई पुरखा लोग इसके लिये प्राण दे चुके हैं और मेरे पूज्य पिताजी भी सहस्रों यवनों को मारकर अब भी इसीलिये अपने प्राणों को न्योछावर करने के लिये तैयार हैं। उसी कुल में जन्म लेकर, उसी पिता का पुत्र होकर, यदि

धर्म्म पर प्राण न्योछावर करने से डरूँ तो मुझे धिक्कार है।

सूबा—तू बड़ा हठी है। अच्छा, तुझे एक घंटे का मौका और दिया जाता है; देख, खूब सोच और समझकर जवाब दे।

यह कहकर सूबा सरहिंद ने फिर छोटे कुमार फतहसिंह को, जो केवल सात वर्ष का था, निराले में ले जाकर पूछा—"क्यों बच्चे, तुझे भी भाई की तरह मरना मंजूर है या मुसलमान होगा?" इस छोटे कुमार ने भी यही जवाब दिया—"मैं मुसलमान क्यों होऊँगा? मैं तो भैया के संग जाऊँगा।" अब सूबा बड़ा चकित हुआ। निराले में सब सभासद और काजियों को लेकर पुनः विचार करने लगा और बोला—"न जाने गोविंदसिंह की शिक्षा में क्या जादू का असर है जो नादान बच्चों को भी ऐसा जोशीला और मजहब का पक्का बना देती है!" एक दूसरा सभासद बोला—"चाहे जो हो, इनकी तालीम है तारीफ के लायक।" तीसरे ने कहा—"अजी, क्या कहते हो? इन बच्चों की करतूत देखकर तो मेरी अक्ल दंग है।" चौथे ने कहा—"अजी, इन बच्चों ने तो वह कर दिखाया है जो बड़े बड़े जवाँमर्दों से भी होना मुश्किल है।" एक ने कहा—"ऐसे लड़कों को तकलीफ पहुँचाना इनसानियत से खिलाफ है।" कोई बोला—"ये इनसान नहीं, कोई पीर हैं।" योंही तरह तरह की बातें लोग कहने लगे।

इतने में एक लंबी दाढ़ीवाले काजी साहब ने कहा कि "चाहे जो हो, आखिर साँप के बच्चे से वफा नहीं है। अगर ये पाक दीन इसलाम कबूल न करें तो जरूर कत्ल करवाना मुनासिब है और यही शरह का हुक्म है।" बहुत कुछ सोच-विचारकर सूबा बोला कि "अच्छा, इन्हें एकबारगी कत्ल न करवाकर आखरी दम तक इन्हें दीन इसलाम कबूल करने

का मौका देना चाहिए। कोई तरकीब ऐसी सोचनी चाहिए जिससे मौत को नज़दीक दिखा-दिखाकर इनसे मुसलमान होने के लिये कहा जाय। मुमकिन है लड़के मान जायँ और अगर न मानेंगे तो आखिर शरह के हुक्म की तामील तो की ही जायगी।" यह सोचकर सबों ने यही सलाह ठहराई कि दोनों भाइयों को अलग-बगल खड़ाकर इनके पैर से शुरू करके चारों तरफ ईंट की चुनवाई करवाई जाय और बीच बीच में इनसे मुसलमान होने के लिये पूछा जाय तथा चुनाई बराबर जारी रहे, अंत को जब गले तक दीवार पहुँचने पर भी न मानें तो सिर तक दीवार खड़ी करके इन्हें जीते ही जी दफन कर दिया जाय। धन्य! नर-पिशाच तेरी युक्ति को, और धिक्कार है तेरी नीचता को!!! अस्तु, जब यही सलाह पक्की हुई तो इन निस्सहाय सात और नौ वर्ष के बच्चों को बुलाकर खड़ा किया गया और फिर उनको इस दंड का स्वरूप समझाकर पूछा गया कि "कहो, खूब सोच-विचार लिया, दीन ईसलाम कबूल करोगे ?" उत्तर में बड़े कुमार ने यही कहा—"बहुत पहले से सोच चुका हूँ। मृत्यु स्वीकार है, धर्म छोड़ना मंजूर नहीं।" अब तो सूबा ने इशारा किया और इन बच्चों के पैर से ईंटों की चुनाई शुरू हो गई। शहरपनाह की एक दीवार गिराकर वहीं पर ये दोनों बालक खड़े किए गए और चुनाई होने लगी। जब घुटने तक दीवार पहुँची और जोरावर से पूछा गया "कहो, मुसलमान होना मंजूर हो तो अब भी तू बच सकता है, तो उत्तर में उसने यही कहा—"क्यों बार बार वाहियात बकते हो, मुझे अपने इष्टदेव का ध्यान करने दो।" अब तो चुनाई कमर तक पहुँच गई। सारे सभासद विस्मित और चकित चित्रवत् खड़े यह हृदय-

विदारक दृश्य देख रहे थे। सूबा ने पूछा—"क्यों लड़के, अब भी तेरा इरादा बदला हो तो तेरी जान बचसकती है !" जोरावर ने कहा—"अरे नराधम ! चुप रह, बकवाद न कर।" अब तो उसने इशारा किया और फिर चुनाई कमर के ऊपर से आरंभ हुई। छोटा कुमार फतहसिंह, निर्वात, निष्कंप दीप की तरह, आनंदचित्त खड़ा अपने बड़े भ्राता के दृढ़ उत्साहपूर्ण चेहरे की ओर देख रहा था। जोरावर ने छोटे भाई की ओर देखकर कहा,—'क्यों भाई, क्या हाल है ? कुछ चिंता तो नहीं है ?' छोटे कुमार ने उत्तर दिया—"नहीं भैया, कुछ भी चिंता नहीं है, उस सत्य श्री अकालपुरुप के चरणों में शीघ्र ही पहुँचूँगा इसी को बड़ी खुशी है, क्योंकि पिताजी ने कहा है कि वह दिन बड़े भाग्य के होंगे जिस दिन हम सब लोग उस अकालपुरुष के चरणों को प्राप्त होंगे।" फिर बड़े भाई ने पुछा—"कहो भाई, पिताजी के कौन से वचन तुम्हें इस समय शांति दे रहें हैं ?" फतहसिंह बोला—"भाई साहब सुनिए,

चित्त चरण कमल का आसरा, चित्त चरण कमल संग जोड़िए।
मन लोचे बुराइयाँ गुरु, शब्दी यह मन होड़िए।
बाँह जिन्हादी पकड़िए सिर दीजिए बाँह न छोड़िए।
गुरु तेगबहादुर बोलिया, धर पइए धर्म्म न छोड़िए।
चिंता ताकी कीजिए, जो अनहोनी होय।
यह मारग संसार में, नानक थिर नहिं कोय॥"

यह सुनकर बड़े कुमार ने कहा—"धन्य हो ! धन्य हो !" चुनाई पूर्ववत् जारी थी, दीवार छाती तक जा पहुँची। फिर सूबा ने पूछा—"कहो लड़को, अब भी दीवार गिराकर तुम निकाले जा सकते हो यदि मुसलमान होना मंजूर, हो।" कुमार ने उत्तर दिया—"चुच रह पापी कहीं का, बार बार वाह

गुरु के ध्यान में विघ्न न डाल।" अब तो दीवार गले तक पहुँच गई। फिर भी एक बार जोर से चिल्लाकर सूबा बोला—"अरे लड़को, अब भी मान जाओ, अभी भी वक्त है।" उत्तर में केवल कुमार यही बोला—"धिक्कार है, धिक्कार है तुझको!" फिर दोनों भाई 'ओ३म्, ओ३म्' का उच्चारण करने लगे। दीवार की चुनाई जारी रही। लो ठोड़ी तक, नाक तक, बालकों ने आखें पहले ही से बंद कर ली थीं, सिर के ऊपर तक दीवार चुन दी गई। पहले अंधकार, कुछ मूर्च्छा फिर एकदम अंधकार! बस समाप्त! धन्य! धन्य! ऐसी वीर आत्माओं को! सौ सौ बार धन्य उस आदर्श शिक्षा को!! धिक्कार ऐसे नराधम और हृदयशून्य नर-पिशाचों को जिन्होंने निस्सहाय बच्चों को यों मारा। जब इन दोनों बालकों के यों मारे जाने का वृत्तांत माताजी ने सुना तो तुरंत ही मणि-हीन फणी की तरह वे मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़ीं और पागलों की तरह उसी बुर्ज पर से, जहाँ ये ठहराई गई थीं, कूदकर उन्होंने प्राण दे दिए। गुरु गोविंदसिंहजी के निस्सहाय परिवार का यों अंत हुआ।

दसवाँ अध्याय

गुरु गोविंदसिंह के दिन फिरे

जब शिष्यों द्वारा गुरु साहब को अपने निस्सहाय वीर पुत्रों की यों धर्म्मबलि होने का संवाद पहुँचा तब पहले तो वे बड़े शोकातुर हुए और फिर इन कुमारों की दृढ़ता, निर्भीकता और धर्म्मपरायणता पर बार बार धन्य धन्य करने लगे। गुरु साहब के संगी-साथी सभी लोग यह हृदय-विदारक संवाद सुनकर आँसू बहाने लगे। भला, निस्सहाय बच्चों को ऐसी निर्दयता से मरवा डालना कौन सी शरह का हुक्म है ? धिक्कार है ऐसे अत्याचारियों को ! यह कहकर गुरुजी ने एक कुशा उखाड़ ली। शिष्यों ने पूछा, गुरु महाराज ! यह कुशा आपने क्यों उखाड़ी ? गुरुजी ने उत्तर दिया—भाइयों, यह कुशा उखड़ी मत समझो, यह मुसलमानी राज्य की जड़ उखाड़ी गई है। जिस राजा के राज्य में निस्सहाय बच्चों पर ऐसा अमानुषिक अत्याचार हो, वह राज्य गया ही समझना चाहिए। मुगलों के अत्याचार और धर्मांधता का प्याला अब लबरेज हो चुका, अब फल मिलने की बारी है। ऐसा भास होता है कि अब थोड़े ही दिनों में यह राज्य नष्ट-भ्रष्ट हो जायगा। सूबा सरहिंद की, जिसने यह अत्याचार किया है, बड़ी दुर्दशा के साथ मृत्यु होगी और ये ही सिक्ख लोग उसके कोट और नगर को उजाड़, वीरान और भस्मीभूत करेंगे। अब देर नहीं है। मुसलमानी राज्य के नाश का समय बहुत निकट आ गया। गुरु साहब का यह प्रबल शाप सुनकर रायकल्ला का हाकिम, जो मुसलमान था और गुरु

साहब का हृदय से भक्त था, हाथ जोड़कर बोला—"महाराज ! आपने यह शाप तो मुसलमान मात्र के लिये दे दिया। मैंने तो आपका कुछ अपकार नहीं किया, प्रत्युत जी-जान से मैंने आपकी सेवा की है।" उसके वचन सुन गुरु साहब बोले—"यह शाप तुम्हारे ऐसे भद्र पुरुषों के लिये नहीं है। अत्याचारी नराधमों के लिये है। जो जैसा करता है वैसा पाता है। इससे तुम्हारा संतोष न हो तो लो मैं तुम्हें अपनी एक तलवार देता हूँ। जब तक तुम्हारे कुल में इस खड्ग की पूजा होती रहेगी, तुम्हारा वैभव अखंड रहेगा।" रायकल्ला ने सादर गुरु साहब का खड्ग लेकर प्रतिष्ठित किया और, ऐसा कहते हैं कि, जब तक इसके कुल में इस खड्ग की पूजा जारी रही तब तक इसके घरानेवालों का वैभव भी स्थिर रहा। सूबा सरहिंद के बारे में गुरु साहब का शाप अक्षरशः सत्य हुआ, जिसका वृत्तांत पाठकों को आगे विदित होगा। इस स्थान पर कुछ दिन निवास कर गुरु साहब दीना नामक ग्राम को गए। यहाँ इनके एक प्रिय शिष्य लक्ष्मीधर चौधरी ने इनकी बड़ी खातिर की और खामगढ़ नाम के एक किले में इनको ठहराया। गुरु साहब के यहाँ पहुँचने का संवाद मालवा देश भर में फैल गया और दूर दूर से इनके शिष्य भेंट पूजा लेकर आने लगे। भाई रूपा के घराने के धर्म्मचंद और प्रेमचंद बड़ी श्रद्धा से गुरु साहब के दर्शनों को आए और कई घोड़े तथा बहुत सा धन-रत्न उन्होंने इनकी भेंट किया। साथ ही किसी समय में गुरु हरगोविंदजी साहब अमानत के तौर पर इनके पास जो बहुत से अस्त्र-शस्त्र छोड़ गए थे, वे भी इन्होंने गुरुजी के सपुर्द कर दिए। नित्य सैकड़ों सिक्ख लोग सुन सुनकर नाना प्रकार की भेंट-पूजा लेकर इनके दर्शनों को आने लगे, जिससे थोड़े ही दिनों में पुनः इनका

राजसी ठाट ज्यों का त्यों हो गया; पर पुत्रों के मारे जाने का शोक इन्हें नित्य खटकता था। फारसी में इन्होंने एक कविता रची, जिसमें बड़ी ओजस्विनी भाषा में सूबा सरहिंद के अत्याचार और निस्सहाय बालकों के मारे जाने का जिक्र था तथा बादशाह से न्याय की प्रार्थना की गई थी। यह प्रार्थनापत्र प्रस्तुत करके भाई दयासिंह इत्यादि पाँच सिक्खों के हाथ इन्होंने उसे दिल्ली भेज दिया। यह पत्र पंथ खालसा में जफरनामा (विजय-पत्र) कहलाता है। ये लोग यह पत्र लेकर बादशाही दर्बार में हाजिर हुए और यथासमय बादशाह को यह पत्र दिया गया पर क्रूरबुद्धि औरंगजेब ने इस पत्र पर कुछ ध्यान नहीं दिया; और गुरु साहब के दूत निराश होकर लौट आए।

शाहंशाह औरंगजेब के पास यह पत्र भेजकर गुरु साहब मालवा देश के भिन्न भिन्न नगरों और ग्रामों में उपदेश करते हुए कोट कपूरा में आ विराजे। वहाँ का अधिकारी बादशाह की ओर से चौरासी गाँव का तहसीलदार था। उसने गुरु साहब को बड़ी खातिर से अपने पास टिकाया और उनकी कुछ भेंट-पूजा भी की। गुरु साहब कुछ दिन तक वहाँ टिके रहे। एक दिन वे उस तहसीलदार से बोले,—"कुछ दिनों के लिये तुम अपना किला हमें दे दो तो अच्छा हो।" गुरु साहब के वचनों को सुन वह कायर भयभीत हो बोला—"महाराज, मैं बादशाह का सेवक हूँ, तिस पर मैंने आपको अपने यहाँ टिकाया है, यही नियमविरुद्ध कार्रवाई हुई है, फिर यदि किला आपको दे दूँ तो बादशाह मुझे जीता नहीं छोड़ेगा और फिर जब आप आनंदगढ़ ऐसा दृढ़ किला बादशाह से विरोध करके रख नहीं सके तो क्या इस किले को रख सकिएगा ?" उसके यह व्यंग्य वचन सुन, गुरु साहब

बहुत नाराज हुए और बोले—"जिन प्राणों के भय से तुमने मेरी बात स्वीकार नहीं की वे सदा रहनेवाले नहीं हैं। कौन कह सकता है कि बहुत थोड़े ही दिनों में तुम्हें सब छोड़कर परलोक की यात्रा न करनी पड़े, मरना और सब छूटना तो एक रोज अवश्य है ही; पर इस समय यदि तुम मेरी बात मान लेते तो भारत का बहुत उपकार होता और तुम्हारी भी कीर्ति होती, सो तुमने नहीं मानी, इसका फल आपही पाओगे।" थोड़े ही दिनों में गुरुजी की वाणी सुफल हुई और यह कोट कपूरा का हाकिम एक पठान द्वारा बड़ी दुर्दशा से मारा गया तथा जायदाद और किला इत्यादि सब इसके घरानेवालों के हाथ से जाता रहा। गुरु साहब ने तत्काल ही उस स्थान को छोड़ दिया और वे ढलवा नामक ग्राम में आ विराजे। इनके आगमन का समाचार सुनकर कौल नामक एक सोढी खत्री, जो गुरु साहब के पुरखा पृथिवीचंद के वंश में था, इनके दर्शनों का आया और उसने दो घोड़े और कई जोड़े श्वेत नवीन वस्त्र गुरु साहब की भेंट किए और कर जोड़ प्रार्थना की कि "अब आपको यह मुसलमानी नीले वस्त्र पहने रहने की कोई आवश्यकता नहीं है। इन वस्त्रों को त्यागकर श्वेत वस्त्र धारण कीजिए।" गुरु साहब ने उस वृद्ध पुरुष के वचन मान नीले वस्त्र उतारकर उन श्वेत वस्त्रों को धारण कर लिया और नीले वस्त्र को फाड़ फाड़कर यह कहते हुए वे अग्नि में फेंकने लगे—"नीले वस्त्र ले कपड़े फाड़े, तुरुक पठानी अमल गया।" उधर जो सिक्ख लोग गुरुजी की आज्ञा न मानकर प्रतिज्ञापत्र पर हस्ताक्षर करके आनंदगढ़ छोड़कर चले गए थे, वे अपने अपने घर पहुँचे तो लोगों ने उन्हें बहुत धिक्कारना आरंभ किया। कोई कहने

लगा—"जिस गुरु ने तुम को पशु से मनुष्य बनाया, हल जोतने से तलवार पकड़ना सिखाया, पतित से तुम्हें वीर बनाया, ऐसे संकट के समय उसका साथ छोड़कर तुम लोगों ने बड़ी नमकहरामी की है। धिक्कार है तुमको !" किसी ने कहा—"जब जीवन, धन और आत्मा सपुर्द कर मन, वचन और कर्म्म से गुरु के हो चुके तो फिर उनका संग छोड़ देना नराधमों का काम है।" कई लोग यह भी कहने लगे—"देखो, गुरु गोविंदसिंह ने सब सुखों को लात मारकर युद्ध में अपने पुत्र कटवाए, नाना प्रकार के क्लेश सहे, हमीं लोगों के उद्धार के लिये शाहंशाह औरंगजेब ऐसे प्रबल शत्रु से वैर ठाना उनका संग छोड़कर तुम लोगों ने बड़ी कृतघ्नता की है।" किसी ने यह भी कहा—"जिस महात्मा ने धर्म्म और देश के लिये सर्वस्व की बाजी लगा दी हो, सिवा धर्म्मरक्षा के, देशोन्नति के, जिसे कभी दूसरी बातों का ध्यान भी न हो, जो नाना प्रकार की विघ्न आपत्ति सहकर भी अपने महान उद्देश्य पर दृढ़ चट्टान की तरह डटा हो, ऐसे महापुरुष का संग न कर—और ऐसे टेढ़े समय में—तुम लोगों ने महा अन्याय का कार्य्य किया। जाओ, हम लोग तुम्हारे ऐसे नराधमों का मुँह देखा नहीं चाहते।" अस्तु ये लोग जहाँ जाते और जिस इष्ट-मित्र या रिश्तेदार से मिलते वही इन लोगों को फटकार सुनाता था। चारों ओर इनपर फटकार की बौछार होने लगी। अब तो इन लोगों को बड़ी आत्मग्लानि हुई और सबों ने मिलकर विचार किया कि "हम लोगों से उतावली में बड़ा अन्याय हो गया। ईश्वर-सदृश गुरुदेव के साथ हम लोगों ने बड़ा ही अनुचित व्यवहार किया जो युद्ध के समय उनका संग छोड़कर चले आए। अब जिस तरह से हो, इस कलंक के दाग को मिटाना चाहिए और जहाँ

हों चलकर, गुरु साहब से अपने अपराधों की क्षमा माँगनी चाहिए। वे दयालु हैं, अवश्य क्षमा करेंगे।" यही सलाह करके ये लोग गुरु साहब के पास रवाना हुए। यद्यपि ये लोग गुरु साहब के पास पहुँच गए थे; पर बहुत भीड़-भाड़ के कारण अभी तक इन लोगों को ऐसा अवसर नहीं मिला था कि ये गुरु साहब से अपने अपराधों की क्षमा-प्रार्थना करते। केवल गुरुजी ने देख भर लिया था कि ये लोग आए हैं। किस उद्देश्य से आए हैं अभी इसकी कुछ चर्चा नहीं हुई थी। इधर सरहिंद के सूबा को यह समाचार मिला कि देश मालवा में गुरु गोविंदसिंह जाकर पुनः बल एकत्र कर रहे हैं, सो पिछले सबक को याद कर वह विशेष सावधान हुआ और यथेष्ट बल पकड़ लेने पर फिर दबाना कठिन होगा, यही सोच-कर वह सहस्र सेना के साथ फौरन गुरु साहब के सिर पर आ पहुँचा। संग में खैरख्वाही दिखाने के लिये कोट कपूर का हाकिम भी हो लिया। इस चढ़ाई का हाल गुरु साहब को पहिले ही से मिल गया और वे युद्ध की तैयारी करने लगे। इन क्षमाप्रार्थी सिक्खों ने भी देखा कि "चलो, अच्छा मौका हाथ आया है, इस अवसर पर बिना कहे, गुरुजी के लिये प्राण देकर कलंक का दाग धो डालेंगे।" अस्तु जब गुरु साहब ने जाटों से, जो बहुत से इनकी सहायता को इकट्ठे हो गए थे, युद्ध के लिये स्थान पूछा तो उन लोगों ने कहा कि यहाँ से थोड़ी दूर पर बगहाँ के समीप जो खदराना नाम का एक तालाब है उसके सिवाय और कोई युद्ध के लिये उत्तम स्थान नहीं है और उसके पास ही एक ऊँचा टीला भी है। अस्तु, सदा के मुस्तैद गुरु साहब फौरन् ही उस स्थान के लिये रवाना हो गए। यहाँ इस तालाब और टीले के सिवा

कोसों तक चारों ओर मैदान ही मैदान था; कहीं पेड़, कुआँ या सोता कुछ नहीं था। इसी स्थान पर गुरु साहब उस तालाब और टीले पर दखल जमा मोरचा बाँध जा बैठे। संग में वे क्षमाप्रार्थी सिक्ख लोग भी थे। इन्होंने बिना गुरु साहब के कहे ही सबसे आगे अपना मोरचा बाँधा और जब सूबा सरहिंद की सेना नजर आई तो एक बार ही बड़े जोर शोर से उन पर हमला कर दिया। अब तो दो तरफा जमकर तलवार चलने लगी। गुरु साहब भी टीले पर खड़े होकर अव्यर्थ संधान से तीरों की वर्षा करने लगे। तीर, तलवार और गोला-गोली की मार के बीच सिक्ख लोग आगे बढ़ने लगे।

इस युद्ध में वे ही क्षमाप्रार्थी सिक्ख लोग सबसे आगे थे और इन्होंने बड़ी वीरता के हाथ दिखाए। एक एक जवान दस दस पाँच पाँच यवनों को यमलोक भेजकर टुकड़े टुकड़े होकर गिर पड़ा; पर किसी ने पीछे पैर रखने का नाम न लिया। इनकी देखा-देखी गुरु साहब की बाकी सेना भी बड़े उत्साह से लड़ी। यद्यपि सूबा सरसिंद ने किचकिचाकर कई बार बड़ी तेजी से हमला किया; पर दृढ़ चट्टान के सदृश डटे हुए केवल इन चालीस वीरों ने ऐसी तलवार चलाई कि वह एक इंच भी आगे न बढ़ पाया। गुरु साहब मौके मौके से अपने अव्यर्थ शर-संधान के द्वारा शत्रुओं के सैकड़ों सिपाहियों को मार रहे थे। केवल इन्हीं के तीरों ने सैकड़ों को मारा और घायल कर दिया था; पर इस रोज इन चालीस वीरों के ऐसा युद्ध किसी ने नहीं किया। गुरु साहब भी मन ही मन धन्य धन्य कर रहे थे। अंत को जब युद्ध होते होते संध्या का समय हो गया तो सूबा सरहिंद ने हाकिम कोट कपूरा से पूछा—"मेरी सेना बहुत प्यासी हो गई है, यहाँ आस-पास कहीं पानी है या

नहीं।" हाकिम कोट कपूरा ने उत्तर दिया "यहाँ दस दस कोस तक कहीं पानी का नामोनिशान नहीं है; केवल एक तालाब है, जिस पर सिक्ख लोगों ने मोरचा बाँधा है और शायद वह मोरचा छूट जाय इसलिये उस तालाब के पानी को भी खराब कर दिया है, इसलिये वह भी पीने योग्य नहीं है।" अब तो सूबा बड़ा चिंतित हुआ और प्यासी सेना बार बार पानी माँगने लगी। यद्यपि सिक्ख लोग भी प्यासे हो रहे थे; पर आज उन्होंने जैसी वीरता, दृढ़ता और धीरता दिखाई वैसी कभी नहीं दिखाई थी। ये चालीसों वीर कटकर भूमि पर गिर पड़े; पर कोई पीछे न मुड़ा। सूबा सरहिंद ने जब देखा कि बिना पानी युद्ध करना असंभव है तो उसने अपनी सेना को लौटने की आज्ञा दी। मुगल सेना के पीछे मुड़ते ही सिक्खों ने पीछा किया और भागते हुए सैकड़ों मुगल सिपाही भी इनके हाथ से मारे गए। तीन कोस तक पीछा करके सिक्ख लोग वापस आए और शत्रुओं का बहुत सा सामान भी लूट में इनके हाथ आया। इस युद्ध में गुरु साहब के भी बहुत से सिपाही मारे गए थे; पर युद्ध की भीषणता और शत्रुओं की संख्या देखते हुए पाँच हजार के मुकाबले में दो तीन सौ सिपाहियों की हानि कोई बड़ी हानि न थी। यह सब उन्हीं चालीस वीरों की बदौलत था, जिन्होंने सारे युद्ध की आँच अपने ऊपर झेल ली थी और जो गुरु साहब की सेवा में एक सच्चे प्रभु-भक्त की तरह वीरलोक को प्राप्त हुए। जब गुरु साहब संध्या समय, युद्ध समाप्त होने पर, मैदान देखने निकले तो उन्होंने सब के आगे मोरचे पर इन्हीं चालीस जवानों की लाशों को पाया। ये लोग शत्रुओं की शवराशि पर पड़े हुए थे। मरे हुए जवानों का हाथ भी किसी शत्रु ही की

गरदन पर था। इन लोगों को पहिचानकर गुरु साहब के नेत्रों में जल भर आया और वे बोले—"ओह! वीरो, तुमने यों अपना खून बहाकर पूर्व अपराध को धो डाला है। धन्य हो! धन्य हो!! तुम्हें अनंत स्वर्ग प्राप्त होगा, तुम्हीं वास्तव में मुक्त जीव हो।" यह कह वे पृथिवी पर बैठ गए और अपने रूमाल से उनके मुख की धूल झाड़ने लगे। इन जवानों में से महासिंह नामक एक वीर अब तक जीता था। वह बड़े आग्रह से गुरु साहब की तरफ देख रहा था। यद्यपि यह वीर सख्त घायल हो गया था, सिर और कलेजे से रक्त की धारा प्रवाहित थी; पर साँस चल रही थी। उस पर दृष्टि पड़ते ही गुरु साहब दौड़कर उसके पास आए और उन्होंने अपनी गोद में उसका सिर रख लिया। गुरु साहब बोले—"कहो भाई, तुम्हारी कुछ इच्छा है?" उसने आँसू बहाते हुए कर जोड़ निवेदन किया—"महाराज, कृपाकर आप उस पत्र को जिसपर हम लोगों ने आनंदगढ़ का किला छोड़ते समय दस्तखत किए थे, फा डालिए।" गुरु साहब ने तत्काल ही उस पत्र को जेब से निकालकर फाड़कर फेंक दिया। इससे वह सिपाही बड़ा प्रसन्न हुआ और गुरुजी की गोद में "श्री वाह गुरु" उच्चारण करता हुआ वीर-गति को प्राप्त हुआ। गुरु साहब ने इन चालीस वीरों की बड़ी प्रशंसा की और इन्हें "मुक्ते" और "मुक्त वीरो" की पदवी प्रदान की। अब तक भी खालसा पंथ में ये वीर लोग "चालीस मुक्ते" के नाम से पुकारे जाते हैं और वह तालाब जहाँ लड़ाई हुई थी मुक्तसर के नाम से विख्यात हुआ। यह युद्ध माघ बदी १ संवत् १७६२ में हुआ था। अब प्रति वर्ष 'चालीस मुक्तों' के स्मरणार्थ यहाँ माघ संक्रांति को एक मेला

लगता है जो 'मुक्तसर का मेला' के नाम से विख्यात है। गुरु साहब ने इन चालीस वीरों की, चंदन की चिता चुनवा-कर, अपने हाथ से दाह-क्रिया की और बाकी मृत वीरों की भी यथाशास्त्र दाह-क्रिया करके और जीवित वीरों को पारितो-षिक, मधुर वचन, आदर सत्कार से संतुष्ट करके वे आगे बढ़े। मार्ग में कई स्थानों पर ठहरते और शिष्यों को अपने उपदेश से कृतार्थ करते हुए वे भटिंडा पहुँचे। इनका शुभागमन सुनकर डल्ला नाम का एक भक्त इनके दर्शनों को आया और अपने घर ले जाकर उसने इनकी बहुत कुछ सेवा-पूजा की। गुरुजी का आना सुनकर दूर दूर के ग्रामों से सब शिष्य लोग आ आकर गुरु साहब का दर्शन करने, सदुपदेश सुनने और भेंट पूजा चढ़ाने लगे।

यहीं पर कुछ दिन बाद गुरुजी की गृहिणी भी आ पहुँचीं और शाहंशाह औरंगजेब का एक पत्र भी आया कि "मैं बहुत दिनों से आपके दर्शनों की अभिलाषा रखता हूँ; पर राज्य के बखेड़े और शरीर बीमार रहने के कारण आपके पास आ नहीं सकता। आपका पत्र भी मुझे प्राप्त हुआ था; पर इसी बखेड़े में अब तक उस पर कुछ कार्रवाई नहीं हो सकी। मुझे आपसे मिलने की बड़ी इच्छा है। आपने जिस धर्म्म का बीज बोया है, वह वास्तव में हिंदू और मुसलमानों में प्रीति का बढ़ानेवाला है; इसलिये आप यदि कृपाकर दिल्ली पधारें तो अत्युत्तम हो।" अपने प्रबल शत्रु औरंगजेब का यह नम्रता-युक्त पत्र पा गुरुजी समझ गए कि अवश्य दाल में कुछ काला है, इसलिये न तो वे दिल्ली गए और न उन्होंने बादशाह के पत्र का कुछ उत्तर ही दिया। औरंगजेब के छल का समाचार वे कई बार सुन चुके थे; इस-

लिये "मणिना भूषितः सर्पः" वाली कहावत याद करके वे विशेष सावधान हुए और उन्होंने दिल्ली जाने का नाम नहीं लिया। यद्यपि औरंगजेब ने यह भी लिख दिया था कि मैंने अपने सब सूबों के नाम हुक्मनामा भेज दिया है कि आगे से आप पर कोई चढ़ाई न करे और तदनुसार गुरु साहब पर बहुत दिनों तक कोई चढ़ाई हुई भी नहीं; पर तो भी गुरु साहब ने छली यवनराज के बचनों का विश्वास नहीं किया। उनका ऐसा करना उचित भी था, क्योंकि वीरवर शिवाजी को औरंजेब ने यों ही धोखे से फँसाया था। सो ऐसे धोखेबाज के चंगुल में न जाकर गुरु साहब ने बहुत बुद्धिमानी की, इसमें तनिक भी संदेह नहीं। गुरु साहब यहाँ जिस जगह ठहरे थे वहाँ एक गुरुद्वारा बना है जो दमदमा साहब के नाम से विख्यात है और यहीं पर गुरुजी ने अपनी स्मरण शक्ति से ग्रंथ साहब का भी निर्माण किया था जिसका जिक्र पहले एक अध्याय में आ चुका है। यहाँ पर ग्रंथ साहब का कार्य्य संपूर्ण हो जाने पर गुरु साहब दक्षिण देश की सैर को रवाना हुए और साथ मे पाँच सौ शिष्यों को लिये बड़े ठाट-बाट से दक्षिण का दौरा करते और मार्ग में भक्तों को अपनी अमृतमयी वाणी से सदुपदेश देते हुए राजपुताने की ओर चले आए। यहाँ पर नरायन नामक एक कसबे में महंत चेतराम नाम का एक दादूपंथी साधु रहता था। वह इनसे वार्त्तालाप करके बहुत प्रसन्न हुआ और बड़ी खातिर से कुछ दिनों तक उसने इनको अपने पास रखा। यहाँ कुछ दिवस निवासकर और मंहत जी से वार्त्तालाप का आनंद उठाते हुए गुरु साहब कार्तिक पूर्णिमा का मेला देखने और उपदेश देने के लिये अजमेर के पास पुष्करराज

में आ विराजे। यहाँ मेले में गुरुजी ने अपने उद्देश्य का प्रचार किया और शिष्य तथा भक्तों ने अनेक प्रकार की भेंट-पूजा चढ़ाई। गुरुजी ने इस द्रव्य को स्वयं ग्रहण न करके अपने नाम से पुष्करराज में एक सुंदर पक्का घाट बनवा दिया जो गोविंदघाट के नाम से अब तक वहाँ विद्यमान है। अभी गुरुजी यहीं विराज रहे थे कि उन्हें कुटिल औरंगजेब की मृत्यु का समाचार मिला। हिंदू धर्म के प्रबल शत्रु का मरना सुनकर सिक्खों ने बड़ी खुशी मनाई और वे परस्पर कहने लगे कि गुरु साहब के शाप से ही औरंगजेब मरा है। जो हो, औरंगजेब तो मर चुका था और शाही तख्त के लिये उसके लड़कों में झगड़ा शुरू हो गया। बादशाह की मृत्यु दक्षिण देश में हुई थी। उस समय उसका पुत्र आजमशाह उसके पास था। पिता के मरते ही उसने अपने भाई कामबख्श को, जो बिहार का शासक था, अपने पास धोखे से बुलावा भेजा और एक दिन विश्वासघातक ने छोटे भाई को मरवा डाला तथा आप बादशाह का ताज अपने सिर पर रख बादशाह बन बैठा। इधर दिल्ली में औरंगजेब का बड़ा पुत्र बहादुरशाह मौजूद था और उसने पिता की मृत्यु का समाचार सुनकर अपने नाम से शाही खुतबा पढ़वाकर सिंहासन पर आसन जमाया। एक म्यान में दो तलवारें क्योंकर रह सकती थीं; आजमशाह ने अपने दलबल के साथ अपने बड़े भाई बहादुरशाह से तख्त छीनने के लिये दिल्ली की ओर कूच किया। पिता की प्रबल सेना, जो दक्षिण विजयार्थ गई थी, सब उसके संग थी। इधर दिल्ली में बहादुरशाह के पास बहुत थोड़ी सेना थी। इस मौके पर बहादुरशाह ने अपने सहायकों को इकट्ठा करना शुरू किया। उसे गुरु गोविंदसिंह

और सिक्ख वीरों के नवीन उत्साह और प्रबल शक्ति के समाचार विदित थे; इसलिये मौके पर उसने गुरु साहब से भी सहायता चाही और अपने दो विश्वस्त कर्मचारियों को भेज गुरु साहब से सहायता की प्रार्थना की। गुरु साहब को जब यह पत्र पहुँचा तो पहिले तो उन्होंने यही सोचा कि "चलो यह दुष्ट आपस में कटकर जितने मरें उतना ही अच्छा है"; पर फिर यह विचार कर कि यदि मेरी सहायता से बहादुरशाह विजय-लाभ कर सका तो बड़ी बात होगी और अपना भी बड़ा काम निकलेगा। यही सोचकर गुरु साहब ने बहादुरशाह को पत्र का उत्तर लिख भेजा कि "आप निश्चिंत रहें। जब मौका आएगा आप मुझे अपने पास पावेंगे।"

बहादुरशाह को यह संवाद भेजकर गुरु साहब ने मालवा देश के सब सिक्खों के नाम आज्ञापत्र भेज दिया कि फौरन् अस्त्र-शस्त्र लेकर उपस्थित हो। गुरुजी के आज्ञापत्र भेजने की देरी थी कि तत्काल ही हजारों सिक्ख जवान युद्ध के पूरे सामान से सज्जित हो आ उपस्थित हुए। इनमें से केवल दो हजार चुने हुए सवारों को संग लेकर गुरु साहब दिल्ली को रवाना हुए। आगे आगे काले मुश्की घोड़े पर गुरु गोविंदसिंह और पीछे दो हजार सिक्ख जवान नंगी तलवार चमचमाते हुए जिस समय दिल्ली पहुँचे उस समय बहादुरशाह इन वीरों का ठाट और उमंग देखकर बहुत संतुष्ट हुआ और उसे अपनी जीत का निश्चय हो गया। थोड़ी ही देर में चर ने आकर संवाद दिया कि 'आजमशाह भी बड़ी धूमधाम से चढ़ा आ रहा है'। अस्तु, इधर भी युद्ध की तैयारी और दौड़-धूप होने लगी। बहादुरशाह ने यथोपयुक्त मोरचेबंदी करके गुरु साहब और उनकी सेना को संरक्षित दल में अपने पास

रखा । शत्रु के पहुँचते ही लड़ाई छिड़ गई । दोतरफा गोला-गोली छूटने लगी, मानों सावन-भादों का मेह बरस रहा था। शूर वीरगण आगे बढ़ने लगे और लोथ पर लोथ गिरने लगी तथा कायर दबक दबककर मरने लगे । गुरु साहब संरक्षित दल में थे; इसलिये युद्ध में भाग न लेकर वे एक ओर चुपचाप खड़े अपना मौका देख रहे थे। दोपहर तक युद्ध होते होते जब दोनों सेनाएँ अच्छी तरह गुथ गईं और घनघोर लड़ाई मच गई तब गुरु साहब को मौका मिला । इस समय उभय पक्ष का बल तुला हुआ था। अस्तु, इस मौके पर एकाएक पार्श्वभाग से आक्रमण करने से शत्रु निश्चय पराजित होंगे —यह निश्चयकर गुरु साहब ने अपनी सेना को, जो सब प्रकार से सज्जित थी और शत्रुओं के बाएँ पार्श्वभाग में एक आम के वन में छिपी खड़ी थी, आक्रमण करने का बिगुल दिया। गुरु साहब का इशारा पाते ही ये सिक्ख जवान एकाएक बड़ी तेजी से आजमशाह की सेना पर हाथों में तलवार लिए जा झपटे और मारे तलवारों के उन्होंने दल को तितर-बितर कर दिया । शत्रु से पार्श्वभाग में आक्रांत होने के कारण आजमशाह की सेना खड़बड़ा उठी और घूमकर शत्रुओं के सम्मुख होने की चेष्टा कर ही रही थी कि इसी बीच में गुरु साहब ने आजमशाह को, जो हाथी पर चढ़ा युद्ध का आदेश दे रहा था, देख पाया और धनुष पर बाण चढ़ा ऐसा अव्यर्थ संधान किया कि तीर आजमशाह के कलेजे से पार हो गया और उसका शरीर हाथी पर से छटपटाकर भूमि पर गिर पड़ा । शाहजादे के मरते ही सारी सेना लड़ना छोड़कर भागने लगी। शत्रुओं के पीठ दिखाते ही सिक्खों ने पीछा किया और वे बड़ी दूर तक उन्हें खदेड़ते चले गए।

अंत को बहुत कुछ माल-असबाब लूटकर वे वापस आए। बहादुरशाह इस जीत से बड़ा प्रसन्न हुआ और गुरु साहब को इस विजय का मुख्य कारण जानकर उनका बड़ा कृतज्ञ हुआ तथा बड़े सत्कार से उन्हें मोतीबाग में ठहराया। वह नित्य प्रति गुरु साहब के पास आकर कृतज्ञता जतलाता और कहता कि "आप ही की बदौलत यह जीत नसीब हुई है। कुछ मेरे लायक सेवा बतलाइए।" उसके बार बार कहने से एक दिन गुरु साहब ने कहा कि "पंजाब के पहाड़ी राजाओं ने, और खासकर सूबा सरहिंद ने, मुझ पर बड़ा अत्याचार किया है सो यदि आप मुझे कुछ बदला दिया चाहते हैं तो इन लोगों को मेरे सपुर्द कर दीजिए।" गुरु साहब के वचन सुन बादशाह बोला—"गुरु साहब, आपकी आज्ञा पालन करने से अभी मेरी सलतनत में फिर गड़बड़ मच जायगी। अभी तक मैं जमकर तख्त पर बैठने भी नहीं पाया हूँ और न सब जगह मुनासिब अमन चैन ही हो पाया है। ऐसे समय सूबों से छेड़छाड़ करने से बड़ा बखेड़ा उठ खड़ा होगा; इसलिये मुनासिब यही है कि आप कुछ दिन सब्र करें, मेरा ठीक ठीक इंतजाम हो जाने दें, फिर आप जैसा चाहेंगे वैसा ही किया जायगा।" बादशाह के यह चातुरीपूर्ण वचन सुन गुरु साहब कुछ नाराज होकर बोले—"खैर, कोई हर्ज नहीं, यदि इस समय आपने मेरा मन नहीं रखा; पर एक समय ऐसा भी आवेगा कि बिना आपकी सहायता के मेरा एक ही शिष्य मेरे ऊपर किए हुए अत्याचारों का बदला लेने में समर्थ हो सकेगा। बादशाह सलामत! यह बादशाही हमेशा कायम नहीं रहती। जो आज फकीर है वह कल बादशाह होता है और जो आज बादशाह है वह कल फकीर होगा।

ऐशा जानकर आपको धर्म्म पर दृढ़ रहना चाहिए। राज्य जाने के भय से न्याय से विमुख होना सच्चे बादशाह का धर्म्म नहीं है। ये ही मेरे सिक्ख लोग, जिन्हें आपने इस समय तुच्छ जानकर इनके मन की बात नहीं की है, किसी समय अपनी तलवार के जोर स्वतंत्र बादशाह होंगे और कौन कह सकता है कि इनके राज्य का विस्तार कहाँ तक होगा ? राज्य को दो दिन का सपना जानकर आपको भी न्याय और धर्म्म पर स्थिर होना चाहिए।" गुरु साहब के वचन सुनकर बादशाह बहुत लज्जित हुआ और उसने घर जाकर गुरु साहब के पास बीस लाख की अशरफी भेज दी तथा यह सँदेशा कहला भेजा कि मुझे पता लगा है कि आनंदगढ़ बर्बाद हो जाने से आपका बहुत नुकसान हुआ है। इस समय और तो मैं आपकी कुछ सेवा नहीं कर सकता; पर यह द्रव्य आप अंगीकार करें तो मैं अपने को बड़ा कृतकृत्य मानूँ।" गुरु साहब ने बादशाह के विनय-युक्त वचन सुन ये अशर्फियाँ अंगीकार कर लीं; पर सूबा सरहिंद का अपने सुकुमार बालकों पर अत्याचार का मामला रात-दिन उनके दिल पर खटकता था। इन्हीं दिनों बादशाह ने अपने राज्य में दौरा करने का विचार कर गुरु साहब से निवेदन किया कि यदि आप भी कृपाकर इस दौरे में मेरे साथ रहें तो बड़ी अच्छी बात हो। बादशाह का कहना मानकर गुरु साहब अपना घर-बार दिल्ली ही में छोड़कर बहादुरशाह के संग पाँच सौ सिक्ख सवारों को साथ ले दक्षिण देश के दौरे के लिये रवाना हो गए तथा राजपूताना, मालवा होते हुए उज्जैन में आ विराजे। उज्जैन पहुँचकर बादशाह ने एक आम दर्बार किया जहाँ राजपूताना इत्यादि सब जगहों के राजा लोग इकट्ठे

हुए थे और उन्होंने बादशाह को नजर दी थी। इसी आम दर्बार में बादशाह ने सारे राजपूत राजाओं के सामने गुरु साहब की बहुत तारीफ की और कहा कि इन्हीं की बदौलत मुझे बादशाही तख्त नसीब हुआ है। राजा लोग कर जोड़-कर गुरु साहब से मिले और उन्होंने उनकी भेंट-पूजा की। यहीं घूमता फिरता महंत चेतराम दादूपंथी साधु भी आ पहुँचा जिससे गुरुजी से भेंट हुई थी और वह गुरु साहब से पुनः मिलकर बड़ा प्रसन्न हुआ। नाना प्रकार के कथा प्रसंग में महंत ने यह चर्चा भो चलाई कि दक्षिण प्रांत के नादेड़ ग्राम में माधवदास नाम का एक बैरागी साधु रहता है। उसके कई शिष्य हैं और बड़ा ठाठ-बाट है। मंत्र-शास्त्र और तंत्र-विद्या में इसकी बड़ी ख्याति है। जो कोई महात्मा या साधु अभ्या-गत उसके यहाँ जाता है उसका आदर सत्कार तो खूब होता है पर उसने एक मंच बना रखा है और आगत महात्मा को उसी मंच पर बैठा देता है फिर न जाने किस मंत्र के बल से वह मंच उलट जाता है और बैठा हुआ आदमी मुँह के बल भूमि पर गिर पड़ता है। मेरी भी यही दुर्दशा हो चुकी है। सो आप यदि उस प्रांत में जायँ तो विशेष सावधान रहिएगा।" गुरुजी ने कहा कि "इस चेतावनी के लिये आपको धन्यवाद है। मैं अवश्य वहाँ जाऊँगा और मंच की परीक्षा भी करूँगा।"

———

ग्यारहवाँ अध्याय

गुरु गोविंदसिंह के शिष्य भाई बंदा का सूबा सरहिंद से बदला लेना

महंत चेतराम से विदा होकर गुरु साहब बहादुरशाह के संग दक्षिण देश के बुरहानपुर नामक स्थान तक गए; पर वहाँ एक दिवस सिक्ख और मुसलमान सिपाहियों में एक सुअर के शिकार के बारे में झगड़ा उठ खड़ा हुआ और दो-तरफा तलवार भी चल गई। अस्तु, गुरु साहब ने यहीं से बादशाह का संग छोड़ दिया और अकोला, खानदेश इत्यादि दक्षिण प्रांत के कई स्थानों की सैर करते हुए वे नादेड़ नामक ग्राम में, जहाँ माधवदास तांत्रिक बैरागी रहता था, जा पहुँचे। जिस समय गुरुजी वहाँ पहुँचे उस समय वह बैरागी अपने आसन पर नहीं था, कहीं बाहर गया हुआ था। पर उसके चेले और सेवकों ने गुरु साहब की बहुत खातिर की और उसी मंच पर ले जाकर उन्हें बैठाया। गुरुजी पहले से सावधान थे। इसलिये यद्यपि इन लोगों ने मंत्र-तंत्र का बहुतेरा जोर मारा, पर वे दृढ़ता से आसन जमाए मंच पर ज्यों के त्यों बैठे रहे; जिसे देखकर बैरागी के शिष्य-वर्ग बड़े चकित और भयभीत हुए और उन्होंने जाकर अपने गुरु को सब संवाद सुनाया। माधवदास गुरु साहब का प्रताप सुनकर डरता काँपता वहाँ आया और आकर गुरुजी के चरणों पर गिर पड़ा। गुरुजी ने पूछा कि तुम कौन हो तो वह कहने लगा कि मैं तो आपका बंदा हूँ। गुरु साहब बोले कि बंदे का यही काम है कि स्वामी की सेवा करे और

आज्ञा माने; यह काम नहीं है कि जादू टोना फरेबबाजी चलाकर लोगों को धोखे में डाले या तंग करे। तुम यदि सच्चे वंदे हो तो यह सब टोना तंत्र-मंत्र छोड़कर धर्म की सेवा में तत्पर हो जाओ। अब तो यह बैरागी बड़ा ही नम्र होकर हाथ जोड़कर खड़ा हो गया और बोला कि महाराज, अब आज से मैंने तंत्र मंत्र सब छोड़ा। आप जो आज्ञा करेंगे वही करूँगा। आप कृपा कर मुझे भी अपनी शिष्य-मंडली में शामिल कीजिए। गुरुजी ने उत्तर दिया कि नाम को यों तो बहुतेरे शिष्य हुआ चाहते हैं; पर मैं शिष्य उसी को करता हूँ जो धर्म पर प्राण देने की प्रतिज्ञा करे और सर्वदा हथेली पर सिर रखे रहे। यदि तुम्हें यह स्वीकार हो तो तुम्हें शिष्य कर सकता हूँ; अन्यथा व्यर्थ शिष्य और गुरु कहलाने से कोई लाभ नहीं है। गुरु साहब के उक्त वचन सुन बैरागी सिर ऊँचा करके कहने लगा—महाराज, मेरा यह शरीर भी राजपूत क्षत्रिय का है। युद्ध में मरने से मैं नहीं डरता। आप कृपापूर्वक अवश्य ही मुझे अपनी सेवा में लें, फिर आप देखेंगे कि मैं आपके उद्देश्य को सिर देकर पूरा करता हूँ या नहीं। मैं आपकी शरण आया हूँ, आप मुझे न त्यागें। गुरु साहब ने माधवदास के विनय और नम्रता-युक्त वचन सुन और वीर पुरुष जानकर उसे शिष्य बनाना स्वीकार किया और तदनुसार अमृत संस्कार करके उन्होंने उसका नाम भाई बंदा रखा। उसका बैरागी वेष छुड़वा उन्होंने वीर वेष से उसे सज्जित करवाया और अपने तर्कस से निकालकर पाँच तीर और एक तलवार उसे प्रदान किया तथा निम्नलिखित पाँच विशेष उपदेश भी दिए—

१—पर-स्त्री—गमन कदापि न करना। ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना।

२—मिथ्या भाषण न करना।

३—अपना एक नया पंथ मत चलाना।

४—गुरुद्वारों के स्थान में गद्दी लगाकर मत बैठना।

५—सिक्ख लोगों पर आज्ञा न चलाकर उन्हें अपने भाई सा मानना और बर्तना।

यह भी कह दिया कि यदि इन शिक्षाओं पर चलोगे तो तुम्हारा बड़ा नाम और यश होगा तथा मेरे उद्देश्य की पूर्ति भी ठीक-ठीक कर सकोगे। यदि इसके विपरीत चलोगे तो दुर्दशा होगी। इससे खूब सावधानी के साथ काम करना। मैं तुम्हें अब पंजाब देश की ओर यात्रा करने की आज्ञा देता हूँ। वहाँ के सूबा सरहिंद ने मेरे दो निरपराध बालकों का खून किया है। पहले जाकर उसका बदला लो और देश भर में खालसा पंथ और अकाल पुरुष की उपासना का प्रचारकर हिंदू धर्म के शत्रुओं का ध्वंस करो। उक्त उपदेश देकर गुरु साहब ने भाई बंदा की यात्रा का पूरा प्रबंध कर अपनी सेना में से पचीस शूर वीर लड़ाके सवार उसके साथ कर दिए और देश मालव तथा माँझा और पंजाब के सब सिक्खों के नाम आज्ञापत्र भेज दिया कि "भाई बंदा को अपना नायक मान-कर उसे सब प्रकार से सहायता देना।" यह सब प्रबंध करके गुरु साहब ने भाई बंदा को और भी बहुत से अस्त्र-शस्त्र प्रदान किए और भाई बंदा गुरु साहब को प्रणामकर तथा अकाल पुरुष का नामोच्चारण कर सब साज-सामान के साथ, पंजाब की ओर रवाना हुआ। यह भाई बंदा वास्तव में राजपूताने के एक जागीरदार रामदेव का पुत्र था। बचपन में

यह बड़ा चंचल और उपद्रवी था; मार-पीट और उठा-पटक किया करता था। जब युवा हुआ तो जंगलों में निर्भय आखेट करना और लूट-खसोट करना इसका व्यवसाय हुआ। इसके आतंक से सारा इलाका काँपा करता था। इसका नाम लक्ष्मणदेव था। गोली चलाने, तीर का निशाना मारने, तलवार चलाने, पटेबाजी में यह अपना सानी नहीं रखता था और घोड़े की सवारी तथा शिकार का भी इसे बेहद शौक था। एक दिवस अनजान में इसने एक गर्भवती हरिणी को मार डाला; पर उसे गर्भवती जानने पर उसे बड़ी दया आई और हरिणी का पेट चिरवाकर उसने दो बच्चे बाहर निकलवाए। बहुत कुछ यत्न करने पर भी जब ये बच्चे जीवित न रह सके और तड़प तड़पकर मर गए तब तो कुमार लक्ष्मणदेव के दिल को बड़ा ही सदमा पहुँचा और केवल इसी घटना से सदा के कठोर, चंचलमति और उद्दंड युवा के मन में वैराग्य उदय हो आया और वह अपने उद्यमों से उदासीन होकर संत महात्माओं की सोहबत करने लगा। इसी सत्संग में एक वैरागी जानकीदास से उसकी भेंट हो गई। इन्हीं के संग कसूर जाकर वह वहाँ के एक प्रसिद्ध महात्मा का शिष्य हो गया तथा लक्ष्मणदेव से उसका नाम माधवदास पड़ गया। कुछ दिनों बाद एक साधु-मंडली के साथ तीर्थयात्रा करता हुआ वह नासिक पहुँचा और वहीं एक वन की कंदरा में रहकर उसने बहुत दिनों तक ध्यान-उपासना की। कुछ दिन बाद यहाँ एक औघड़ योगी से उसकी भेंट हुई जिससे उसे एक तंत्र तथा जादू की पुस्तक प्राप्त हुई। इस पुस्तक में मंत्रों की सिद्धि का भेद लिखा हुआ था, जिसे औघड़

की बतलाई विधि अनुसार उसने सिद्ध किया और इसी सिद्धि की बदौलत दक्षिण प्रांत में उसका बड़ा नाम हो गया तथा कई सहस्र चेले भी उसके हो गए। पर गुरु गोविंदसिंह ऐसे अनुभवी और प्रतापी महात्मा पर वह जादू-टोना कुछ न चला सका और विवश हो उसे इनके आगे सिर झुकाना पड़ा। गुरु साहब का आदेश पा उनकी कार्य्य-सिद्धि के लिये वह रवाना हुआ। गुरु साहब का आज्ञापत्र सभी स्थानों को जा चुका था। अस्तु, जहाँ यह पहुँचता बहुत से भक्त वीर लोग इससे आगे आकर मिलते और युद्ध के ठाट-बाट के साथ इसके साथ हो जाते थे। भरतपुर में गुरु साहब के एक भक्त ने इसे पाँच सौ रुपया भेंट किया जो इसने अपने साथियों में बाट दिया। निकट होने के कारण मालवा देश के सिक्ख बहुत शीघ्र ही आ पहुँचे। इसी प्रकार से अपने दलबल के साथ वह पंजाब जा पहुँचा। सूबा सरहिंद के पास भी यह संवाद जा पहुँचा कि गुरु गोविंदसिंह का भेजा हुआ भाई बंदा अपने दलबल के साथ पुनः पंजाब में फिसाद मचाने को चला आ रहा है। अस्तु, उसके यहाँ जो कुछ सिक्ख लोग नौकर थे उनको उसने कैद करना चाहा; पर वे लोग भागकर भाई बंदा के संग जा मिले। मार्ग में कई ग्राम और कसबों में लूट-पाट करता हुआ भाई बंदा आगे बढ़ा जा रहा था और चारों तरफ उसने मुनादी करवा दी थी कि "मेरा दल लूट-पाट करने निकला है जिसे हाथ गरम करना हो मेरे संग आ जावे।" सो थोड़े ही दिनों में कई गरोह प्रबल डाकुओं के भी उसके संग हो गए। एक स्थान पर बादशाही खजाना जा रहा था। उसे भी लूटकर उसने अपने साथियों में बाँट दिया। मार्ग में

सूबा सरहिंद के चार भेदिया सिक्खों को उसने पकड़ लिया, जिनमें से दो को तो क़त्ल करवा डाला और दो को नाक काटकर सूबा सरहिंद के पास भेज दिया। आगे अंबाला इत्यादि स्थानों से होते हुए सूबा सरहिंद के जन्म-स्थान कसबा कंजपुरा में सिक्ख लोग जा पहुँचे। सूबा ने उस स्थान की रक्षा के लिये कुछ सेना भेजी थी; पर वह सेना अभी मार्ग ही में थी कि सिक्खों ने लूट-पाट करके उस कसबे का चिह्न तक न रखा। सब भस्मीभूत करके वे आगे बढ़े। मार्ग में उन पठानों का गाँव पड़ता था जो युद्ध के अवसर पर गुरु गोविंदसिंह को छोड़कर भाग गए थे। वे सब भी क़त्ल कर डाले गए और उनका गाँव लूट-पाट कर अग्नि के अर्पण कर दिया गया। आगे चलकर खबर मिली कि सूबा सरहिंद के भेजे हुए सिपाही चार तोपों के साथ थोड़ी दूर पर ठहरे हैं। संवाद पाते ही सिक्ख जवान मारोमार वहाँ जा पहुँचे और उन्होंने एकदम उन लोगों पर आक्रमण कर दिया। इस फुर्ती और तेजी से यह आक्रमण हुआ कि मुसलमान सिपाही सब अपनी तोपें चला भी न पाए और धड़ाधड़ क़त्ल होने लगे। भाई बंदा की सेना क्या थी मानों प्रलयकाल की बिजली थी; जहाँ गिरती सर्वस्वाहा कर देती थी, जिसका रोकना मनुष्य की शक्ति से बाहर मालूम पड़ता था। थोड़ी देर तक ये सिपाही लोग सिक्खों के सामने लड़े भी; पर शीघ्र उन्हें अपना सब साज-सामान छोड़कर भागना पड़ा। डेरा-डंडा, रसद-पानी, चार तोपें, गोला-गोली, बारूद और कई उम्दा घोड़े भी सिक्खों के हाथ लगे। जहाँ कहीं हिंदुओं पर मुसलमानों के कुछ अत्याचार का पता लगता, भाई बंदा खड़े पैर तलवार

खींचे वहाँ पहुँच जाता और उस ग्राम में कत्लआम मचा देता था। जो सामने आता, मारा जाता था; जो चोटी या जनेऊ दिखाता वही बचता, बाकी सभी तलवार के घाट उतार दिए जाते थे। इसकी इस कार्रवाई से बहुत सी हिंदू प्रजा भी इसके संग हो गई और सिक्खी स्वीकार करके लूट के माल से मजे में अपना गुजारा करने लगी। यहाँ से आगे बढ़कर भाई बंदा जब कसबा सठौरा के पास पहुँचा तो वहाँ की हिंदू प्रजा ने आ निवेदन किया कि यहाँ का मुसलमान हाकिम हम लोगों पर बड़ा अत्याचार करता है और हिंदू धर्म्म की कोई क्रिया नहीं होने देता। यह समाचार पा भाई बंदे ने अपने सिक्खों के साथ वह ग्राम जा घेरा। सठौरा के हाकिम ने अपनी सेना तैयार कर लड़ाई छेड़ दी। दोनों तरफ से खासी लड़ाई होने लगी। दिन भर की लड़ाई के बाद सायंकाल को सिक्खों ने एक बार ही धावा करके मैदान मार लिया। इसी सठौरा के हाकिम ने गुरु गोविंदसिंह के सहायक बुद्धूशाह को मरवा डाला था, इसलिये खड़े पैर ही सिक्खों ने उसके कई नामी नामी मुसलमान सर्दारों को जिंदे ही पकड़कर जला दिया, सठौरा कसबे को खूब लूटा और सिवाय हिंदुओं के, जो चोटी-जनेऊ दिखाकर कठिनता से बचे, सबको कत्ल कर डाला। यहाँ का किला भी इन लोगों के अधिकार में आ गया, जहाँ से बहुत कुछ युद्ध का सामान और कई तोपें भी इन्हें मिलीं। अब तो इन लोगों का बल बहुत बढ़ गया और दूसरे दिवस निकट के एक और किले को, जिसका नाम मुसलगढ़ था और जिसे सूबा सरहिंद ने संवत् १७३४ में बनवाया था, इन लोगों ने धावा कर बात की बात में ले लिया। मुसलमान और पीर-

जादे बिचारे ककड़ी की तरह काटकर फेंक दिए गए; अनेक अग्नि में जला दिए गए। तात्पर्य्य यह कि सिक्खों ने यहाँ खूब मनमानी की और अपने जी का बुखार निकाला। इस किले की बनावट में कुछ हेर-फेर करके सिक्खों ने इसका नाम लोहगढ़ रखा; पर भाई बंदा ने अपना सदर मुकाम सठौरे ही के किले में नियत किया। अब तो चारों तरफ के मुसलमान लोग भाई बंदे की करतूत देखकर थर थर काँपने लगे। उन्हें कोई उपाय नहीं सूझ पड़ता था; क्योंकि औरंगजेब के बाद से मुगल शासन कमजोर पड़ गया था। बहादुरशाह दक्षिण देश की शांति-स्थापना में व्यस्त था तथा सब सूबे लोग जो जहाँ पाते आप मालिक होने की फिक्र में लगे हुए थे। इसलिए इनके घर में खुद ही फूट और अविश्वास फैल रहा था, जिसने इनकी ताकत में घुन लगा दिया था। सो यह मौका सिक्खों को बहुत अच्छा मिला और वे जी खोलकर मार-काट, लूट-खसोट करने लगे और कई स्थानों के किले पर भी दखल जमा बैठे; पर इन लोगों का असली लक्ष्य सरहिंद का सूबा था और गुरु साहब के आज्ञानुसार उसका ध्वंस करना जरूरी था। उसकी तैयारी भी ये लोग कर रहे थे। इसी बीच में बहुत से मुसलमानों ने भाई बंदा से आकर प्रार्थना की कि "हम आपकी शरण हैं, हमारी रक्षा कीजिए, यों बेदर्दी से मत मारिए। जो आज्ञा कीजिएगा करेंगे।" भाई बंदा ने उन्हें शरण आया जान अपने आप रख लिया। पर इन दुष्टों के दिल में तो और ही था और इन्होंने एक दूत को गुप्त तौर से एक पत्र देकर सूबा सरहिंद के पास भेजा कि "बंदा का बल बहुत बढ़ता जा रहा है, आप शीघ्र ही इसका उपाय कीजिए नहीं तो फिर सभाँलना मुश्किल होगा। हम लोग भेद लेने

के लिये यहाँ नौकर हो गए हैं और पल पल का समाचार आपको भेजा करेंगे।" यह पत्र एक पीले बाँस के नेजे में भरकर दूत के हाथ रवाना किया गया। मार्ग में कहीं संयोग से भाई बंदे के ऊँट हाँकनेवालों ने उसे जल्दी जल्दी जाते देखकर पकड़ा और वे ऊँट हाँकने के लिये उससे वही बाँस का नेजा माँगने लगे। उसने देने से इंकार किया तब तो उन लोगों ने जबरदस्ती उससे वह नेजा छीन लिया और उसी से जोर जोर से मार मारकर ऊँट हाँकने लगे। बार बार के मारने से वह बाँस फट गया और मुसलमानों का पत्र निकल-कर भूमि पर गिर पड़ा। अब तो सिक्खों ने तत्काल ही यह पत्र भाई बंदा के पास पहुँचाया और बाँचने पर शरणार्थी मुसलमानों की सारी कलई खुल गई। भाई बंदा ने उक्त सब मुसलमानों को एक कोठरी में बंद करवा दिया और एक एक को बाहर निकालकर तलवार से सिर काट डाला। उसके इस कार्य से मुसलमानों में आतंक सा छा गया। जिस मकान में ये लोग कैद किए गए थे वह अब तक 'कतल गढ़' के नाम से विख्यात है। इन दिनों यह हाल था कि यदि कोई हिंदू किसी मुसलमान का सताया आकर बंदा से शिकायत करता तो बंदा खड़े पैर उस ग्राम पर धावा कर देता और ग्राम के सारे मुसलमानों को तलवार के घाट उतार लूटकर ग्राम में आग लगा देता था जिससे सारे मुसलमान भय से थर थर काँपने लगते। गुरु गोविंदसिंह का आज्ञापत्र देश-विदेश सभी स्थानों को जा चुका था। अस्तु, सभी जगह से नित्य शस्त्रधारी सैकड़ों सिक्ख जवान आकर भाई बंदा की बल-पुष्टि कर रहे थे। मार्ग में आते हुए भाई बंदा की करतूत का समाचार सुनकर ये लोग भी जो कोई मुसलमान

का ग्राम पाते उस पर चढ़ाई कर लूट-पाट कर उसे तहस-नहस कर डालते थे। माझा देश के सिक्खों ने पेशावर तथा गुलजारी आदि कई ग्रामों को नष्ट-भ्रष्ट कर डाला। मार्ग में इन लोगों ने गुरु साहब के चिर शत्रु रोपड़ के पठानों पर भी हमला कर दिया। इनके सहायतार्थ सूबा सरहिंद ने कई तोपों के साथ पाँच हजार सेना भेजी; पर ये लोग भी बड़ी बहादुरी से लड़े और शाम होते होते ऐसी प्रबलता से इन्होंने एक धावा किया कि मुसलमानों के पैर उखड़ गए और जीत सिक्खों की ही हुई। बहुत सी युद्ध की सामग्री और कई तोपें इनके हाथ लगीं। अभी दूसरे दिन अच्छी तरह सूर्योदय भी नहीं हुआ था कि सूबा सरहिंद की और भी बहुत सी सेना आ पहुँची। सिक्खों ने खड़े पैर ही इस सेना पर भी आक्रमण कर दिया। खूब मार-काट हुई। चार-पाँच सौ के करीब सिक्ख जवान भी खेत रहे। पर मुसलमान सरदारों के मारे जाने से इस बार भी मुसलमानों ही की हार हुई तथा सिक्ख लोग खूब लूट-पाटकर खुशी खुशी भाई बंदा से जा मिले। भाई बंदा इन लोगों की कारवाई सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ और सब लोगों को यथोपयुक्त इनाम इत्यादि बाँटकर उसने संतुष्ट किया। अपने को तैयार समझकर गुरु गोविंदसिंह के मुख्य आदेश के पालनार्थ सब सरदारों के पास उसने सूचना भेज दी कि मिती फागुन सुदी १३ संवत् १७६४ को सरहिंद पर चढ़ाई की जायगी और गुरु साहब के निस्सहाय बच्चों के मारने का बदला लिया जायगा। इस समाचार को सुनकर सिक्खों का खून जोश में उबाल खाने लगा और दो रोज पहले से रात्रि भर जाग जागकर वे लोग अपनी तलवारों पर सान देने लगे। एक एक सिक्ख

बालक की नस मारे जोश के फड़क रही थी। अंत को वह दिन आ पहुँचा और सिक्ख जवान हाथों में तलवार ले और बंदूकों में गोली भर भर सरहिंद की ओर चढ़ दौड़े। सूबा सरहिंद ने भी अब की खूब तैयारी की। दीन इसलाम का झंडा खड़ा करके उसने आसपास के सहस्रों मुसलमानों को सहायतार्थ बुलवा भेजा तथा अपनी सेना को पूरी तरह सज्जित कर, सामने बीसों तोपों को सजाकर खड़ा किया। सिक्खों के पहुँचते ही दनादन तोपों से गोले छूटने लगे। चारों तरफ धुँआधार मच गया। सैकड़ों सिक्ख एक एक बार में उड़ने लगे। तो भी वे बड़ी वीरता से आगे बढ़ रहे थे, पर तोपों की मार के आगे सिक्खों के पैर उखड़ने लगे। जब भाई बंदा ने यह हालत देखी तो एक ऊँचे टीले पर चढ़कर उसने लक्ष्य कर कर गोलंदाजों को धराशायी करना आरंभ किया। इसके अव्यर्थ संधान से सभी गोलंदाज मारे गए और तोपों का मुँह ठंढा पड़ने लगा। अब तो सिक्खों ने अवसर पा एक बार ही धावा कर दिया और तोपों पर से उछल उछलकर वे शत्रु-श्रेणी में जा घुसे तथा मार-काट का बाजार गर्म करने लगे। सिक्खों की तेज तलवार की मार से मुसलमान खानजादे, पीरजादे खीरे ककड़ी की तरह कटने लगे। रक्त की धारा बह निकली। लोथ पर लोथ गिरने लगी और युद्ध-भूमि खासी रण-रंगभूमि बन गई। घायलों के आर्त-नाद तथा मुसलमानों के 'अल्लाहो अकबर' और सिक्खों के 'सत्य श्रीअकाल, वाह गुरु की फतह' इत्यादि शब्दों से रणभूमि गुंजायमान हो उठी। तात्पर्य यह कि दो घड़ी तक खूब ही घन-घोर युद्ध हुआ। सिक्ख मुसलमान दोनों एक दूसरे के संग रेल-पेल हो गए, शत्रु-मित्र की पहचान नहीं रही। तात्पर्य यह

कि ऐसा घनघोर युद्ध बहुत कम हुआ होगा। भाई बंदा एक ऊँचे टीले पर बैठा अपने अव्यर्थ संधानों से ताक ताककर मुसलमान सरदारों को मार रहा था जिनके मारे जाने से मुसलमानी सेना व्यूहबद्ध लड़ना छोड़कर अस्त-व्यस्त हो गई थी। टीले पर बैठे हुए भाई बंदा ने शत्रुओं की यह कमजोरी लख ली और थोड़ी सी संरक्षित सेना लिए हुए, जो उसने अलग रख छोड़ी थी, तलवार खींचे बड़ी तेजी से वह शत्रुओं पर जा टूटा। सहसा इस ताजी सेना के आते ही सिक्खों के भी दिल दूने हो गए और एक बार बड़े जोर-शोर से उन लोगों ने मुसलमानों पर पुनः हमला किया। इस तेजी को मुसलमानी सेना, जो दिन भर लड़ते लड़ते थक गई थी, सह न सकी और पीठ दिखाकर भाग निकली। इस झगड़े में सूबा सरहिंद घोड़े पर से गिर पड़ा और सिक्खों के हाथ गिरफ्तार हुआ। सिक्खों ने उसे लाकर बंदाजी के हवाले किया। बंदा ने उसे अलग एक मकान में कैद करने की आज्ञा दी और सरहिंद को लूटकर बर्बाद करने की भी आज्ञा प्रचारित कर दी। अब तो युद्धोन्मत्त सिक्खों ने खूब ही मार-काट और लूट मचाई। शहर भर में एक भी मुसलमान न बचा। जिन लंबी दाढ़ीवाले काजियों ने गुरु साहब के पुत्रों को मारने की सम्मति दी थी, उन्हें और उनके घरानेवालों को खोज खोजकर सिक्खों ने तलवारों से कत्ल किया और उनके मकान आग लगाकर फूँक दिए। इनकी पान फूल ऐसी बीबियाँ गली गली मारी मारी फिर रही थीं, कोई पूछनेवाला न था। मसजिद मकबरा जो कुछ सामने आया सब तोड़-तोड़कर धूल में मिला दिया गया और शहर सरहिंद को एकदम से उजाड़ विरान करके उसमें

आग लगा दी गई। तीन रोज तक अग्नि जलती रही। बाद इसके सिक्खों ने सूबा सरहिंद की मुश्कें और हाथ पैर अच्छी तरह कसकर उसी जलती अग्नि में उसे झोंक दिया। वह बेचारा वहीं तड़प तड़पकर जल मरा। तात्पर्य यह कि यहाँ सिक्खों ने बहुत ही ज्यादती की और सूबा सरहिंद को अपने पाप का फल यों हाथों हाथ मिल गया। ये सब कार्रवाइयाँ करके भाई बंदा आगे बढ़ा और दो शिष्यों द्वारा उसने गुरु गोविंदसिंहजी के पास यह सब समाचार भेज दिया। गुरु साहब उस समय गोदावरी किनारे एक उत्तम स्थान पसंद कर गृह-निम्मीण कर वहीं निवास कर रहे थे। यहीं एक सैयद से भूमि खरीदकर उन्होंने अति सुंदर गुरुद्वारा और बाग बनवाया और वहीं शांतिपूर्वक वे निवास करने लगे थे। नित्य सुबह शाम ग्रंथ साहब की कथा होती थी और भक्तों को कड़ाह प्रसाद बँटता था। गुरुजी का यहाँ निवास सुनकर धीरे धीरे बहुत से भक्त लोग यहाँ आने लगे और उनमें से एक नगीना नामक भक्त ने जहाँ गुरु साहब नित्य स्नान करके जाया करते थे वहाँ एक घाट बनवा दिया जो अब तक नगीना घाट के नाम से प्रसिद्ध है तथा दूसरा एक घाट शिकार घाट कहलाता है, जहाँ गुरुजी नित्य शिकार खेलने जाया करते थे। गुरु साहब का निवासस्थान अविचल नगर के नाम से प्रसिद्ध है और सिक्खों की इस पर बड़ी पूज्य बुद्धि है। यहीं निवास करते हुए जेठ बदी १३ संवत् १७६४ को गुरु साहब के पास ये दोनों शिष्य पहुँचे और सूबा सरहिंद की मृत्यु और भाई बंदा की कार्रवाई का सब हाल गुरु साहब को ज्ञात हुआ। यह संवाद सुनकर गुरु साहब के साथी सिक्खों ने बड़ी-खुशी मनाई और कहने लगे कि "देखो, बुरे कर्म्म का

यों हाथों हाथ फल मिलता है।" अस्तु यह, जानकर कि भाई-वंदा मेरे उद्देश्य को आगे के लिये अच्छी तरह पूर्ण कर सकेगा, गुरु साहब भी निश्चंत हो वहीं निवास करने और भक्ति उपासना में दिन बिताने लगे।

बाँरहवाँ अध्याय

गुरु साहब का स्वर्गारोहण

गोदावरी नदी के तीर अविचल नगर में निवास करते हुए शांतिपूर्वक गुरु साहब अपना दिन बिता रहे थे। इसी बीच में दक्षिण देश से लौटता हुआ बहादुरशाह इनसे मिलने आया और उसने इनके दर्शन कर बहुत कुछ भेंट-पूजा चढ़ाई तथा एक बहुमूल्य हीरा भी सबके सामने बड़े अभिमान के साथ गुरु साहब के अर्पणकर उसका बहुत सा बखान किया। गुरु साहब को उसकी यह बात न भाई और सबके सामने उन्होंने इस हीरे को नदी में फेंक दिया। यह देखकर जब बादशाह कुछ असंतुष्ट होने लगा तो गुरुजी कहने लगे कि "आप कुछ सोच न करें। आज से इस कार्य्य के स्मारक में यह स्थान हीराघाट के नाम से प्रसिद्ध होगा।" सो ऐसा ही हुआ। वह स्थान आज भी हीराघाट के नाम से प्रसिद्ध है। गुरु नानक का सिद्धांत था कि आत्मिक दृष्टि से सारे प्राणी बराबर हैं, चाहे वे हिंदू हों या मुसलमान। इस सिद्धांत के अनुसार चलते हुए गुरु गोविंदसिंहजी भी जब उपयुक्त सहृदय सज्जन को पाते तो वह यदि मुसलमान भी होता तो उसे उपदेश देते थे और कई ऐसे लोग उनके मित्र भी थे। अस्तु, इस समय भी इनके पास कई मुसलमान सेवक और भक्त थे। उनमें अताउल्लाखाँ और गुलखाँ नामक दो पठान भी थे, जिनके पिता पैंदेखाँ को गुरु साहब ने किसी युद्ध में मारा था। ये दोनों बड़ी श्रद्धा से गुरु साहब की सेवा में हाजिर

रहते थे। एक दिन इनमें से अताउल्लाखाँ किसी जलसे में शरीक होने गया। वहाँ उसके एक मित्र ने उसे बहुत कुछ ऊंच-नीच समझाया और कहा कि "धिक्कार है तुम्हें जो अपने पितृहंता और इसलाम के वैरी गोविंदसिंह का अन्न खाकर जीवन धारण करते हो और फिर अपना यह वेहया मुख सबको दिखाते फिरते हो। तुम्हारे बाप की रूह तुम्हें कोसती होगी। इसलाम में तुम एक नालायक नाचीज कितने पैदा हुए, कि ऐसी बेशरमी से अपने दिन बिता रहे हो। चुल्लू भर पानी में डूब क्यों नहीं मरते।" अपने दोस्त का यह ताना सुनकर यह खाँ मन में एक बार ही गुरु साहब का कट्टर शत्रु हो गया और उसने अपने भाई को भी सब हाल कहकर उत्तेजित किया। अस्तु दोनों शैतान सदा अपनी घात में लगे रहे; पर मौका नहीं मिलता था, क्योंकि जागते समय हर दम गुरुजी के पास दस-पाँच शस्त्रधारी शिष्य बैठे ही रहते थे। एक दिन सोते समय अर्धरात्रि को इन दुष्टों ने मौका पाया और भादों बदी ४ संवत् १७६४ के दिन रात के समय, जब कि गुरु जी घोर निद्रा में मग्न थे, इन्होंने उनके पेट में कटार भोंक दी। गुप्तहंता का दिल तो छोटा होता ही है, हाथ हिल जाने के कारण, चोट पूरी तरह न बैठी और गुरु साहब तत्काल ही एक चीख के साथ जाग उठे और जब इस मूजी को उठते देखा तो पास ही पड़ी हुई नंगी तलवार उठाकर उछलकर एक हाथ ऐसा मारा कि वह खाँ दो टुकड़े होकर तड़पता हुआ भूमि पर गिर पड़ा। अब तो चारों ओर शोर मच गया और मशालें ले लेकर सिक्ख लोग दौड़-धूप करने लगे। इस खाँ का दूसरा भाई भी भागता हुआ पकड़ा गया और सिक्खों ने उसकी बोटी बोटी काटकर फेंक

दी। तुरंत ही जर्राह बुलाया गया और उसने जख्म सीकर मरहम-पट्टी कर दी और सबेरे सब मुसलमान निकाल दिए गए। जख्म दिन पर दिन आराम होने लगा और करीब आधा सूख भी चला था, इसी बीच में बहादुरशाह ने नौ टाँके के दो पुराने कमान गुरु साहब को नजर में भेजे। उसने कई चीजें भेजा थीं उन्हीं में यह कमान भी था। यह बहुत ही प्राचीन समय के नमूने का बना हुआ बड़ा भारी कमान था। इस कमान को देखकर लोग आश्चर्य करने और कहने लगे कि "ऐसे कमानों को कौन तानकर चलाता होगा ? वे कैसे बली पुरुष होते होंगे ? आजकल तो संसार भर में इन कमानों को तानकर चलानेवाला कोई न होगा।" और वास्तव में बात थी भी ऐसी ही। इन कमानों को निरुपयोगी समझ तथा गुरु साहब को धनुर्विद्या-विशारद जानकर बादशाह ने एक अजूबा पदार्थ के तौर पर इन्हें गुरु साहब के पास भेज दिया था और गुरु साहब, जो कि वास्तव में अपने समय के धनुर्विद्या के पूरे उस्ताद थे, इन कमानों को देख देखकर संतुष्ट हो रहे थे। जब लोगों ने यह कहना शुरू किया कि "इस काल में इन कमानों का तानने और चलाने-वाला कोई नहीं है" तब तो गुरु साहब से न रहा गया और खड़े होकर उन्होंने पैर से दबाकर कमान को तानकर गुण चढ़ाई ही दिया तथा सबके देखते देखते तीर रखकर चला भी दिया। गुरु साहब का यह अद्भुत शौर्य-वीर्य देखकर लोग चकित हुए और साहस पर धन्य-धन्य करने लगे; पर इन कमानों का तानना कोई खिलवाड़ न था। साधारण मनुष्यों से तो इनका उठना भी कठिन था। अस्तु, गुरु साहब ने जोम में आकर तान तो दिया; पर इस दानवी परिश्रम ने उनके जख्म के टाँकों को, जो अभी अच्छी तरह सूखे नहीं थे, तोड़ दिया और

कच्चे जख्म का मुँह खुलकर रक्त का प्रवाह बहने लगा। अब तो सब लोग बहुत घबड़ाए और फिर वही जर्राह बुलाया गया। उसने भी रक्तप्रवाह बंद करने का बहुत कुछ यत्न किया, कई प्रकार से मरहम-पट्टी की; पर कुछ फल न हुआ। घंटे के बाद घंटा बीतने लगा और रक्त-स्रोत ज्यों का त्यों जारी था। अब तो गुरु साहब का शरीर भी निर्बल पड़ने लगा और उन्हें निश्चय हो गया कि अब पयान करने का समय आ गया। अस्तु, जर्राहों को बिदाकर, मरहम-पट्टी सभी उखाड़कर उन्होंने फेंक दी और सब शिष्यों को इकट्ठाकर गुरु ग्रंथ साहब को मँगवा सामने रख तथा स्नानकर नवीन वस्त्र धारण किए और प्राचीन प्रथा के अनुसार पाँच पैसे और एक नारियल मँगवा ग्रंथ साहब के सामने भेंट रखा तथा यह वाणी उच्चारण की—

"आज्ञा भई अकाल की, तभी चलायो पंथ।
सब शिष्यन को हुकुम है, गुरू मानियो ग्रंथ॥

अर्थात् आज से सिवा ग्रंथ साहब के और किसी को गुरु मत मानना और इसी के उपदेश के अनुसार चलना तो सब प्रकार से सुखी होगे। यही आज से गुरु की तरह तुम्हें मार्ग बतावेगा।" अस्तु उसी दिन से ग्रंथ साहब का नाम "गुरु ग्रंथ साहब" हुआ। यह सब कहकर गुरुजी ने अपने पाँचों शस्त्र मँगवाए और फौजी पोशाक पहिन तथा शरीर पर पाँचों शस्त्र यथास्थान कसकर पीठ पर ढाल लटकाई तथा वीरासन से बैठकर कहने लगे कि "देखो मेरे लिये चंदन की चिता तैयार कर रखो और उसी पर इस शरीर को रखकर जला देना तथा पश्चात् कोई समाधि इत्यादि उस स्थान पर कदापि न

बनवाना। चिता को योंही जलता छोड़ देना और हड्डियों को मत छेड़ना, आपही मिट्टी में मिट्टी और राख में राख मिल जायगी।" इसके बाद "सत्य श्रीअकाल, सत्य श्रीअकाल ओ३म्" कहकर उन्होंने शरीर छोड़ा। शिष्यगण गुरुजी की अद्भुत मृत्यु देखकर हैरान-परेशान थे। कितने ही, जो उन्हें पिता और प्यारे मित्र के तुल्य समझते थे, बिलख बिलख-कर रोने लगे। कई प्रवीण शिष्यों ने धीरज धरा और गुरु के मृत शरीर को पुनः सुगंधित जल से स्नान करा तथा केसर चंदन से लिप्त करके पहले से तैयार की हुई चंदन काष्ठ की चिता पर रखकर अग्नि लगा दी। चिता पर प्रबल घृत-धारा पड़ने लगी और अग्नि गर्जन कर धू धू शब्द से जलने लगी। देखते ही देखते प्रतापी गुरु गोविंदसिंह का शरीर भस्म हो गया, सिवा राख के ढेर के और कुछ भी न रहा।

"खाक का पुतला बना, और खाक की तस्वीर है।
खाक में मिल जायगा सब, खाक दामनगीर है ॥"
कोई भी न रहा अंत सब की यही दशा होनी है।
"न गोरे सिकंदर न है कब्र दारा।
मिटे नामियों के निशाँ कैसे कैसे ॥"

तीन दिवस तक यों ही चिता जलती रही। चौथे दिन यद्यपि गुरुजी मना कर गए थे पर श्रद्धालु शिष्यों ने न माना और भस्म हटाने पर सिवा एक लोहे की कर्द के और कुछ न मिला। उक्त स्थान पर इन लोगों ने एक बहुत ही उम्दः आलीशान समाधि-मंदिर बनवाया और उक्त लोहे की कर्द भी उस पर लगा दी जो अब तक गोदावरी नदी के तीर

अविचल नगर में विद्यमान है और उसके दर्शनार्थ दूर दूर से सिक्ख लोग आते हैं। यों शूर वीर प्रतापी गुरु गोविंदसिंह के शरीर का अंत हुआ और उनकी आत्मा उसी अमर पुरुष की गोद में जा विराजी जहाँ से वह "परित्राणाय साधूनां, विनाशाय च दुष्कृतां" भेजी गई थी।

तेरहवाँ अध्याय

गुरु गोविंदसिंह के जीवन की एक झलक

पाठको ! आपने गुरु गोविंदसिंह के जीवन, उनकी कार्य्य-परंपरा और नित्य के व्यवहार को आदि से अंत तक पढ़ा। अब आइए हम लोग मिलकर उसपर कुछ विचार करें और देखें कि उनकी जीवनी से हमने क्या सीखा और उनकी कौन कौन सी शिक्षा इस समय हमारे बर्तने योग्य है अथवा हममें कौन कौन सी कमी इस समय है जिसके लिये गुरु साहब का जीवन एक नमूना हो सकता है। अँगरेजी के किसी कवि ने कहा है कि महापुरुषों की जीवनी इसी लिये लिखी पढ़ी जाती है जिससे हमारे जीवन पर इसका कुछ असर पड़े। यह उपन्यास तो है नहीं कि इस कान से सुना और उस कान से निकाल दिया। यह एक असली जीवन की—हाँ, मनुष्य-जीवन की—वास्तविक घटना है। उसके जीवन के घात-प्रतिघात, उठ-बैठ की सच्ची कहानी है, जो कि कभी कभी उपन्यासों से भी बढ़कर रोचक हो जाती है। हमारे देश में महापुरुषों की जीवनी लिखने की चाल नई नहीं है; पर जैसा कि नियम है श्रद्धा के वशवर्ती होकर भक्त लोग महापुरुषों की वास्तविक जीवनी के साथ कई तरह की औपन्यासिक गाथा भी जोड़ देते हैं और धीरे धीरे यह औपन्यासिक गाथा यहाँ तक बढ़ जाती है कि उक्त महापुरुष उन उज्ज्वल आवरणों के बीच तद्रूप हो जाता है और उसे एक दैवी या अलौकिक पुरुष समझकर हम केवल इतना ही कह-कर और समझकर दूर से हाथ जोड़ देते हैं कि "अमुक तो

साक्षात् देवता के अंश थे या स्वमेव ईश्वर के अवतार थे। उनकी बराबरी संसार में कौन कर सकता है, उनका नाम-स्मरण ही हमारा बेड़ा पार लगा देगा।" पर यदि इन महापुरुषों की जीवनी की पूरी और सटीक आलोचना की जाय तो यह ठीक पता लग जायगा कि अपने जीवन-काल में उनका यही सतत उद्योग रहा है कि लोग हमारे चलाए हुए मार्ग पर चलना सीखें। यदि ईश्वर का अवतार भी होता हो तो उसका भी सिवा एक इसके और क्या तात्पर्य हो सकता है कि मनुष्यों के लिये एक उत्तम आदर्श छोड़ जाना, जिससे वे लोग धर्म्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि अनायास कर सकें। गीता में भगवान् ने कहा भी है कि मेरा अवतार धर्म्म की स्थापना के लिये समय समय पर होता है।

धर्म्म की स्थापना अथवा मनुष्यों के कर्त्तव्य बतलाने ही के लिये महापुरुष अवतीर्ण होते हैं। जब कि समय बदलता रहता है और एक समय की शिक्षा दूसरे समय पर काम नहीं दे सकती तो फिर दूसरा अवतार होता है और मनुष्यों को उनके कर्त्तव्य का मार्ग बतलाया जाता है। महापुरुष कुछ अल्पज्ञ नहीं होते कि एक समय की बतलाई हुई शिक्षा को थोड़े ही दिनों बाद बदलकर फिर नवीन शिक्षा देने की आवश्यकता समझें। उद्देश्य उनका एक ही होता है और श्रुति की तरह उनकी शिक्षा सदा सर्वदा एक ही सच्चे सँदेसे को सुनाती है; पर समय के फेर से हम साधारण मनुष्यों की मति गति भी फिरती जाती है और उसी मति गति के अनुसार सनातन शिक्षा को वैसे ही साँचे में ढालने के लिये एक नवीन साँचेकार की आवश्यकता होती है और वह वही महापुरुष होता है जिसने पहले मूल में असली शिक्षा का उपदेश दिया था। इस

प्रकार से राम, कृष्ण आदि से लेकर आज तक कितनी जीवनियाँ महर्षियों की कृपा से हम पामरों के कानों को पवित्र करती हैं। यद्यपि रामायण, महाभारत की कथा होती है; पर तदनुयायी जीवन बनाने के लिये हमने क्या चेष्टा की ? यह सच है कि अब उन शिक्षाओं, उन उपदेशों को एक नवीन साँचे में ढालने का समय आ गया है, या उनके बाद कोई कोई ऐसे महापुरुष हुए भी जिन्होंने समयानुसार मनुष्यों की मति-गति के अनुसार उसको नवीन साँचे में ढाला। उन्हीं में हमारे चरितनायक गुरु गोविंदसिंहजी भी एक हैं।

गुरु गोविंदसिंहजी का जीवन एक कर्म्मवीर का जीवन था। भगवान् श्रीकृष्ण की तरह उन्होंने भी समय को अच्छी तरह से परखा और तदनुसार कार्य्य आरंभ कर दिया। जैसे कलि के आरंभ में भारतीय राजा घर घर के मालिक होकर अपनी अपनी ढाई चावल की खिचड़ी अलग अलग पकाते थे तब महाराज श्रीकृष्णजी ने देखा कि भारत का यों विभक्त रहना अच्छा नहीं, विदेशियों के लिये द्वार सर्वदा खुला रहेगा, यदि सब छोटे छोटे रजवाड़े—जैसे कि चेदि के शिशुपाल, मगध के जरासंध और मथुरा के उग्रसेन—अपना अपना अधिकार छोड़कर एक साम्राज्य—हाँ, भारत का विशाल साम्राज्य—स्थापन करें तो फिर इस बल को कोई सहसा तोड़ने में समर्थ नहीं हो सकेगा। पर यह बड़ा पुराना सभ्य देश था, बिना भारी युद्ध के ऐसा होना असंभव था। इसी लिये महाभारत का भारी संग्राम रचा गया और धर्म्मात्मा युधिष्ठिर ने इंद्रप्रस्थ की गद्दी पर विराजकर अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान किया और वे राजराजेश्वर कहलाए। उसके बाद नियमानुसार उलट-फेर होता ही रहा। फिर जब तक भारतवासी

विभाजित नहीं हुए तब तक विदेशी नहीं आए थे। होते होते जब मुसलमानों ने भारतमाता पर चरण रखा और वे हिंदू प्रजा को उत्पीड़ित करके निस्तेज करने लगे तब गोविंद-सिंह के रूप में एक महापुरुष ने भारत की शक्ति एकत्र करने की चेष्टा की और बहुत थोड़े से सामान और बड़ा ऊँचा दिल लेकर वे कार्य्यक्षेत्र में अवतीर्ण हुए। यवनों के अधीन हिंदू विभाजित थे। इसलिये उन्हें एकत्र करने के लिये उनको युद्ध का अनुष्ठान करना पड़ा। गुरु गोविंदसिंह ने इसीलिये पहाड़ी राजाओं से युद्ध ठाना था। 'भय बिनु होय न प्रीति' इसी कारण से धीरे धीरे उनकी शक्ति बढ़ी भी और कई पहाड़ी राजा उनका लोहा मानने लगे और समय समय पर उन्होंने उनसे सहायता पाई और उनकी सहायता की भी। यद्यपि कार्य्य आरंभ करने का उपलक्ष उनके पिता पर अत्याचार था; पर जब कार्य्यक्षेत्र में अवतीर्ण होकर उन्होंने देश की दशा देखी तो यह उपलक्ष गौण हो गया और देश का सुधार और उसे समय के अनुसार पूरा शक्तिशाली बनाने का उन्होंने बीड़ा उठाया। उनकी इक्कीस शिक्षाएँ, जिनमें ब्रह्मचर्य्य और युद्ध-विद्या तथा सदा शस्त्र पास रखने और हिम्मती बनने की शिक्षाएँ मुख्य हैं, पूरी समयोचित थीं। इन शिक्षाओं ने कायर हिंदुओं में एक नवीन उत्साह का बीज बो दिया और सिक्ख के नाम से उस जाति का एक फिरका मुसलमानों के लिये आतंक हो गया। गुरु साहब का यही उद्देश्य था कि धीरे धीरे सारे भारतवासी सिक्ख होकर एक प्रबल प्रतापी जाति में परिणत हो जायँ और गिरते हुए मुगल साम्राज्य के समय अपने पैरों के बल खड़े होकर भारत का उद्धार कर सकें। इस उद्देश्य में

उन्हें कुछ सफलता भी हुई । पंजाब में हिंदुओं का प्रबल स्वतंत्र राज्य स्थापित हो गया और यदि अंगरेज लोग यहाँ पदार्पण न करते तो आश्चर्य नहीं कि आज दिन समग्र भारत सिक्खों ही के अधीन दृष्टिगोचर होता। पर परमात्मा को यही मंजूर था कि भारतवासी एक नवीन उत्साह और नवीन शिक्षा से, जिससे सारा पश्चिमी गगन उद्भासित हो रहा है, अलग न रहें और उसने सहज ही में, बिना हाथ-पैर हिलाए ही कहना चाहिए, भारत साम्राज्य अँगरेज जाति को अर्पण कर दिया और हम लोगों का पश्चिमी शिक्षा से परिचय कराया। इन श्वेतांग जातियों का अदम्य ऊत्साह, दृढ़ परिश्रम, समय का पूरा सद्व्यय और सबके ऊपर प्रकृति देवी के छिपे रत्नों के आविष्कार की शक्ति ने हमें चकित और पुलकित कर दिया। राम-युधिष्ठिर की संतान हम इस नवीन जगत् को देखकर उधर ही बड़े बेग से खिंचे जा रहे हैं। इस नवीन ज्योति से हम चकपका गए हैं। इसमें भी परमात्मा ने कुछ मंगल ही सोचा होगा। यह भी उसी की प्रेरणा कहनी चाहिए कि इस समय लोगों को अपनी प्राचीन कीर्ति का भी स्मरण हो आता है और वर्त्तमान पश्चिमी सभ्यता को किस प्रकार से प्राचीन आदर्श के सामने रखकर हम यथोपयुक्त साँचे में अपने को ढाल सकते हैं, जिसमें मन तो भारत का हो और सामान पश्चिमी ढंग पर हो, इसकी खोज लोगों को हुई है, क्योंकि चाहे लाख हाथ पैर मारिए उद्धार का दूसरा उपाय नहीं है। सारा जगत् जिस ओर जा रहा है उसी ओर जाना होगा, नहीं तो आगे बढ़ता हुआ समय-चक्र हमें कुचलता-रौंदता चला जायगा। "फिर पछताए होत क्या जब चिड़ियाँ चुग गईं खेत"। अब सोचना यही है कि इस राह पर चलने

के लिये हम किसका सहारा लें, किससे सलाह पूछें। सलाह तो अपने बड़े-बूढ़ों ही से पूछनी चाहिए, गैर की सलाह तो हमारे लिये लाभदायक होगी नहीं; क्योंकि इतना दर्द और किसको होगा। इसलिये वर्त्तमान काल में हमें अपने महापुरुषों की जीवनी पढ़ने लिखने और उससे सलाह सीखने की बड़ी आवश्यकता है। गुरु गोविंदसिंहजी ऐसे पूर्वजों की सलाह की तो हमें इस समय बहुत ही आवश्यकता है; पर वह समय तो अब है नहीं। क्या करें ? उपाय यही है कि उनकी एक एक शिक्षा को सामने रखकर जाँचें कि इस समय वह शिक्षा कौन से साँचे में ढालने योग्य है जो समय के अनुसार हमारा पूरा मंगल कर सकेगी। अस्तु, उनकी सारी शिक्षा और कार्य्यक्रम को हम यथाक्रम लिखकर उससे परिणाम निकालते हैं।

१—पहला उपदेश और प्रथम उद्योग गुरु गोविंदसिंहजी का अपने शिष्यों में विद्या-प्रचार का था और इसके लिये उन्होंने विद्वान् पंडितों से कहा था कि वेद-शास्त्रों की विद्या सबके लिये है। इसमें केवल द्विज मात्र का ठेका नहीं है। ब्राह्मण हो या चांडाल, इसे ग्रहण कर सकता है। इस समय इस शिक्षा का अक्षर अक्षर मानना आवश्यक है। विद्या एक पवित्र गंगा की धारा है अथवा एक अनंत ज्ञान का समुद्र है, जिसमें जितनी बुद्धि या जितना पुरुषार्थ है उतना जल वह अपने बरतन में भर लेता है, उसमें रोक-टोक क्यों होनी चाहिए ? प्राचीन समय में भी. द्विजेतर वर्णों में से जिसने इस पुरुषार्थ को किया, उसे प्राप्त कर ही लिया। ब्राह्मणों का रोकना किसी काम न आया। वैदिक समय में सत्यकाम जाबाल, पीछे से वाल्मीकि जो कि भिल्ल

डाकू जाति के थे, द्वापर में एकलव्य भील जिसने द्रोणाचार्य को गुरु समझ क्षत्रियों की अस्त्रविद्या सीखी, महात्मा विदुर, कलि में दादू, कबीर, रैदास, इन्होंने ब्रह्मविद्या प्राप्त की। सो जिसको लगन लगी है वह सीख ही लेता है। इसमें रोक रखना कुछ काम नहीं आता, इसलिये पुराने दृष्टांतों से सावधान होकर हमें अब इस क्षुद्रहृदयता को त्यागकर मैदान में आना चाहिए और सारे संसार का प्रभाव जिस ओर है उसी ओर अपना भी मुँह फेरना चाहिए। गुरु गोविंदसिंहजी की चेष्टा ने उनके जीवन ही में जाट और नाई ऐसी नीच जातियों में भी ऐसे ऐसे वीर उत्पन्न कर दिए थे, जो गुरु साहब के दुर्गा के लिये बलि माँगने पर बेखटके सिर देने को तैयार हो गए थे, बड़े बड़े तीसमारखाँ ब्राह्मण क्षत्रिय मुँह देखते ही रह गए थे। इससे यह साबित होता है कि उपयुक्त शिक्षा पाने से चाहे किसी वर्ण का मनुष्य हो बड़े से बड़ा काम कर सकता है। किसी जाति को खड़ा करने और वर्तमान समय के अनुसार उसे संसार के बराबर बनाने के लिये यह परम आवश्यक है कि वर्तमान समय के अनुसार वर्तमान ढंग की, नीति की, हेर-फेर और ऊँच-नीच शिक्षा उसे अच्छी तरह दी जाय। किसी विषय से भी वह अनजान न रहे जिसकी चर्चा वर्तमान सभ्य जगत् में हो रही हो। यही लक्ष्य गुरु गोविंदसिंहजी का था और उस समय राजनीति तथा युद्धविद्या में शिक्षित करने के लिये उन्होंने अपने शिष्यों में सदा शस्त्र बाँधना, कवायद करना तथा युद्ध सीखना इन सब बातों का प्रचार किया था।

२—दूसरा उपदेश गुरु गोविंदसिंह का यह था कि उनके शिष्य ब्रह्मचर्य्य धारण कर इंद्रियों को बस में रखें और

बल-वीर्य्य और प्रताप का अर्जन करें। ब्रह्मचर्य्य के लाभ को बखानना पिष्टपेषण मात्र है। क्या नैतिक, क्या पारमार्थिक और क्या व्यावहारिक या सांसारिक अथवा स्वास्थ्य की दृष्टि से, ब्रह्मचर्य्य की महिमा प्राचीन और आधुनिक सभी विद्वानों ने की है और कर रहे हैं। इसी के धारण करने से खालसा पंथ के अनुयायी ऐसे प्रबल हो गए थे कि मुट्ठी भर सिक्खों ने मुगल सम्राट् को नाकों चने चबवा दिए थे, यहाँ तक कि अंत को मुगल बादशाह को इन्हीं लोगों की सहायता लेनी पड़ी। यह एक ऐसा मूल मंत्र है जो सभी प्रकार से हमें धर्म्म-अर्थ-काम-मोक्ष की सिद्धि दे सकता है। इसका जीता-जागता दृष्टांत हमारे सामने युरोपीय जातियों का विद्यमान है। इनमें प्रायः बीस इक्कीस वर्ष से पूर्व पुरुष और सोलह सत्रह से पूर्व कन्याओं का ब्रह्मचर्य्य नष्ट नहीं होता है। जब मद्य-मांस-सेवी जाति के लिये इतने ब्रह्मचर्य्य की आवश्यकता है तो हम शांत अन्न-फलाहारियों के लिये तो इससे अधिक ब्रह्मचर्य्य धारण करना जाहिए। हमें अपना अहोभाग्य समझना चाहिए कि हमारा जन्म उस आर्यावर्त में हुआ है जहाँ जीवन का एक विभाग इसी कार्य के लिये अलग व्यतीत करने की चाल थी और सारे धर्म्मशास्त्रों की ऐसी ही शिक्षा थी; पर हमने इसे छोड़कर बड़ा ही अनर्थ किया और ही हम सब कुछ खो बैठे। अब भी चेतना चाहिए, विवाहित, अविवाहित, कुमार, युवा, वृद्ध, जहाँ तक हो सके ब्रह्मचर्य्य-व्रत का पालन आज ही से धारण कर लें। धीरे धीरे हम फिर अपने आदर्श को पहुँच सकेंगे। यदि हाथ पर हाथ धरकर बैठे रहें कि हम अब क्या कर सकते हैं, अब तो ब्रह्मचर्य्य नष्ट हो गया, तो कुछ न बन

पड़ेगा। नष्ट हो गया तो क्या हुआ, अब भी नियमानुसार जीवन-निर्वाह कर हम, सब नहीं तो किसी अंश तक तो अवश्य व्यभिचार की वृद्धि को रोक सकते हैं। एक रुपया नहीं बचता और चवन्नी अठन्नी, पैसा धेला भी बचे तो बचाते जाना चाहिए; कभी सोलह आना भी इकट्ठो हो ही जायगा। इसी उद्देश्य को लक्ष्य में रखकर कार्य्य आरंभ कर देना चाहिए। पतित से पतित मनुष्य के लिये भी उन्नति करने की गुंजायश है, आवश्यकता केवल एक एक कदम आगे बढ़ने की है। कहावत है कि एक एक कदम भी चले तो मंजिल पर पहुँच जायगा।

जिन खोजा तिन पाइयाँ गहरे पानी पैठ।
मैं बौरी ढूँढ़न गई रही किनारे बैठ॥

चलो, आगे बढ़ो, खेत तुम्हारा है! हिलो भी! अपने स्थान पर जड़वत् पड़े रहने की अपेक्षा हाथ-पैर हिलाना ही अच्छा है; सो आज ही से यदि ब्रह्मचर्य का उद्योग हो तो समय पाकर हम भी कभी अपने शास्त्रों के उच्च आदर्श को, जिस पर हम एक समय विराजमान थे, पुनः पहुँच सकेंगे।

३—तीसरी शिक्षा गुरु साहब की सदा शस्त्र पास रखने, और युद्धविद्या-विशारद होने की थी। यह भी बड़ी आवश्यक शिक्षा है। युद्ध ही शांति का कारण है। शस्त्रधारी सैनिक के भय और भरी हुई बंदूक की गोली ही के डर से लोग कानून मानकर चलते हैं और राजा अत्याचार करने से डरता है। राजा लोग बड़ी बड़ी सेना और नौ-यानों के लिये करोड़ों रुपए वार्षिक इसीलिये खर्च करते हैं कि इस ठाट बाट को देखकर लोग भय मानें और देश में शांति रहे। अस्त्र हाथ में रहने से चित्त में साहस और एक तरह की मर्दानगी भी

रहती है तथा समय-असमय पर चोर डाकू और हिंसक पशुओं से भी रक्षा होती है और मौका पड़ने पर प्रजा अपनी रक्षा बिना राजा की सहायता के आप भी कर सकती है। किसी जाति का किसी समय में भी इस विद्या से हीन रहना सर्वथा अनुचित है। इस विद्या से हीन रहना नामर्द और कायर हो जाना है। पर न जानें क्यों हमारी न्यायशील सर्कार ने हमें अस्त्रहीन कर युद्ध-विद्या से विमुख रखा है। क्या इस विचार से कि अस्त्र लेकर हम कानून के विरुद्ध कोई कार्रवाई करेंगे? यह तो कदापि नहीं हो सकता। विचार और बुद्धिहीन मनुष्य तो अब भी कानून के विरुद्ध कार्रवाई कर के दंड भागी होते हैं और समझदार आदमी बड़ा अधिकार पाकर भी कभी अनुचित व्यवहार नहीं करते। खैर जो कुछ हो, इस कमी का इलाज हमारे हाथ में नहीं है। कानून के भीतर रहकर जहाँ तक उद्योग कर सकें हमें करना चाहिए। नियमपूर्वक और विज्ञान-सम्मत व्यायाम करके ब्रह्मचर्य्य-धारण-पूर्वक शरीर को बलिष्ठ और तेजस्वी करना तथा कसरत आदि करना और कराना हमारा उद्देश्य होना चाहिए। तात्पर्य्य यह कि सभी तरह से हमें तैयार रहना चाहिए जिसमें यदि कभी न्यायशील सर्कार हमारे हाथ में अस्त्र दे तो केवल थोड़ी सी अस्त्र चलाने की शिक्षा के बाद ही हम इस देश के सर्वोत्तम स्वेच्छासेवक बन सकें और भारत का करोड़ों रुपया, जो सैनिकों के वेतन में खर्च होता है, शिक्षा के अर्थ खर्च हो। इसके लिये जब सर्कार हमें उपयुक्त पावेगी तो कदापि यह अधिकार प्रदान करने में आनाकानी नहीं कर सकती। हमको पहले किसी कार्य के उपयुक्त बनना चाहिए तब उसे प्राप्त करने की इच्छा करनी

चाहिए । गोविंदसिंह के पास वेतनभोगी सेना कितनी थी, केवल स्वेच्छासेवकों की बदौलत वे बड़ी बड़ी लड़ाई लड़ सके और सफलता लाभ कर सके। अब आवश्यकता यही है कि हमारे भाव शुद्ध हों, राजा-प्रजा में परस्पर प्रीति और विश्वास हो और जहाँ तक हो हम सर्कारी कर्मचारियों की आज्ञा और कानून के अधीन रहकर इस कठिन समस्या को सुलझा सकें, ऐसी बुद्धि हमें परमात्मा प्रदान करे। केवल झूठे स्वप्न देखना और हवाई किले बाँधना, इससे कुछ भी उद्देश्य सिद्ध नहीं हो सकता। जिस तरफ जो कुछ नियम के भीतर हो सके पूर्ण रूप से उतना करके छोड़ना चाहिए।

४—चौथी शिक्षा गुरु साहब की थी मादक द्रव्य त्यागने की और विशेषकर गाँजा, तंबाकू, चरस इन सब मादक वस्तुओं से बचने के लिये उन्होंने बहुत जोर दिया था। मादक वस्तु मात्र हानिकारक है, जिसमें धुएँ और अग्नि के संयोग से मादकता प्राप्त करना बड़ा ही हानिकारक है। यह साँस लेनेवाले यंत्र को बिलकुल बेकाम करके कलेजा काला कर देती है। थोड़े से भी परिश्रम के बाद मनुष्य हाँफने लगता है। शरीर की यावत् कला' वायु के आधार पर कार्य करती है। इसी से शुद्ध वायु सेवन करने की विधि सर्वत्र बतलाई गई है। सो हम बड़े दुःख के साथ देखते हैं कि छोटे छोटे बच्चे, जिनके अभी दूध के दाँत भी नहीं टूटे हैं, सिगरेट पीते हुए घूमते फिरते हैं। कैसा भयंकर दृश्य है! वे कोमल पौधे यों नष्ट होते हैं। इसके लिये तो सर्कारी कानून होना चाहिए जिसमें इतने छोटे बच्चे धूम्रपान न करने पावें, या उनके हाथ में ये चीजें न बेची जावें। कहाँ शुद्ध वायु के अर्थ हमारे पूर्वज लोग वेदमंत्र उच्चारणपूर्वक सुगंध और पौष्टिक

औषधियों द्वारा यज्ञ-हवन करते थे और भारत का गगन उस दैवी सुगंधिपूर्ण यज्ञधारा के धूम से आच्छादित था और कहाँ अब हमारे बच्चों के कलेजे के खून के जले हुए धुएँ से गगन आच्छादित हो रहा है! यह कैसा अनर्थ है! प्रत्येक पुरुष का कर्तव्य होना चाहिए कि जब कहीं किसी बच्चे को धूम्रपान करते देखे तो उसे बरजे और उसके बड़ों से कह-कर उसकी इस आदत को छुड़ाने की चेष्टा करे। इसे साधारण विषय न समझना चाहिए। केवल एक इसी बात पर बहुत कुछ निर्भर है। शरीर की भीतरी बनावट में इससे हेर-फेर हो जाता है; इसीलिये गुरु साहब ने इसपर इतना जोर दिया था।

५—पाँचवीं शिक्षा गुरु गोविंदसिंहजी की जीवनी से यह मिलती है कि एक धर्म्माचार्य यदि मन में करे तो अनायास ही बड़े बड़े कार्य कर सकता है, जो औरों से होना नितांत असंभव है। यद्यपि आरंभ में गुरु साहब के पास युद्ध का कुछ सामान न था, पर जब शिष्यों में उन्होंने यह प्रचार किया कि जो दर्शनों को आवे रुपए के बदले यदि भेंट में अस्त्र-शस्त्र या घोड़े लावेगा तो वह विशेष आदर के सहित ग्रहण किया जायगा तो सहज ही थोड़े ही दिनों में उनके पास युद्ध का बहुत सा सामान इकट्ठा हो गया, यहाँ तक कि वे प्रबल सम्राट् औरंगजेब का सामना कर सके। भारत-वर्ष के आजकल के महंत मठाधीश्वर और धर्म्माचार्य्यों को इससे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। सौभाग्य से इस समय न्यायशील बृटिश जाति का हम पर शासन है, जो हर तरह से हमारी रक्षा करती है और मुसलमान बादशाहों की तरह उत्पीड़न नहीं करती है। वरन् बड़े बड़े चोर डाकू और दुष्ट

लोग, जो प्रजा का उत्पीड़न करते थे, बृटिश सिंह के प्रबल प्रताप के आगे नाश को प्राप्त हुए या जहाँ तहाँ दुम दबाकर गायब हुए। दुष्ट आत्याचारियों का अंत हुआ। इसके लिये गवर्नमेंट ने एक अलग महकमा ही कायम कर रखा है, जो दुष्ट और अत्याचारियों का पता लगा लगाकर उनका मूलोच्छेद करता है। अस्तु अब सब प्रकार से शांति है और शेर बकरी एक घाट पानी पीते हैं। ऐसे समय में गुरु गोविंदसिंह का अनुकरण करके सम्राट् से विरोध करने के लिये कोई धर्म्माचार्य्य उतारू हो तो उसे उन्मत्त ही कहना पड़ेगा। बैठे बैठे देश की शांति में विघ्न डालने के पाप का वह भागी होगा। गुरु गोविंदसिंह के समय में तो इस बात की आवश्यकता थी कि कट्टर औरंगजेब के विषैले दाँत तोड़े जाएँ और इसलिये शिष्यों द्वारा भेंट में उन्होंने अस्त्र-शस्त्र इकट्ठा किया। इस समय आवश्यकता क्या है? कौन सा ऐसा कारण है जिसने हमें इस समय संसार की सारी जातियों से हीन कर रखा है। जो सबसे ऊँचे थे, सबसे नीचे हो रहे हैं! मित्रो! वह विद्या थी, जिसने हमारा सिर ऊँचा किया था और सारे भूमंडल के लोग हमसे सीख सीखकर सभ्य होते थे और आज हम उसे सीखने के लायक भी न रहे। संसार की जातियों के मुकाबले में शिक्षितों की संख्या हमारे यहाँ सौ में पाँच भी नहीं है। इसके लिये बहुतेरे लोग सर्कार को दोष देते हैं पर हम कहेंगे कि यह हमारा अपना ही दोष है। बहुत कुछ हमारे धर्म्माचार्य्य, महंत और मठधारियों का दोष है और सबसे अधिक हमारी दानप्रणाली का दोष है। हम जब युद्ध-विद्या में निपुण हैं ही नहीं, शिक्षित हैं ही नहीं, तो सर्कार किसके

भरोसे युद्ध का भारी व्यय घटाकर लोकशिक्षा के अर्थ उसे खर्च करे? हमें अपनी आँख का पहाड़ नहीं दिखाई देता और दूसरे की आँख का तिल देखकर शोर मचाते हैं, उछलते-कूदते हैं। भारतवर्ष की केवल हिंदू प्रजा पचास लाख साधु और फकीर मँगतों का भरण-पोषण करती है—ऐसे मँगतों का जो शरीर से स्वस्थ और काम करने योग्य हैं। एक एक साधु पीछे यदि कम से कम तीन रुपया मासिक भी खर्च होता हो तो महीने में डेढ़ करोड़ और वर्ष में अठारह करोड़ रुपया भारत का इस अर्थ खर्च होता है। अब यदि यही पचास लाख निकम्मे आदमी काम करते तो वर्ष में कम से कम अठारह करोड़ कमाते। वह भी देश के हानि-खाते ही में लिखाना चाहिए। इस प्रकार से देश को प्रति वर्ष छत्तीस करोड़ रुपए की हानि होती है और फल यह होता है कि एक बड़ी संख्या निरुद्यमी, निकम्मे मनुष्यों की बैठे बैठे हलुवा-पूरी उड़ाती हुई गृहस्थों के कठिन परिश्रम से प्राप्त द्रव्य का यों नाश करती है। इन साधुओं में से सैकड़ा पीछे शायद एक भी इस दान का पात्र न होगा; पर तो भी हम आँख मूँद-कर दान किए जाते हैं। ऐसे देश में, जहाँ इतना रुपया यों व्यर्थ बर्बाद होता है, शिक्षा या विद्याप्रचार के लिये लोगों के पास रुपया कहाँ से आवे? नहीं तो क्या कारण है कि अदना सा छोटा जापान देश पचास वर्षों में नव्वे फी सदी प्रजा को शिक्षित कर सके और हम तीस कोटि भारतवासी वर्षों के कठिन उद्योग पर भी पचास लाख रुपया एक विश्व-विद्यालय के अर्थ इकट्ठा न कर सकें। हमारी अयोग्यता का यह ज्वलंत दृष्टांत है। देश के दान के अपात्रों में खर्च होने का यह जीता-जागता नमूना है। जब इतना रुपया प्रति वर्ष

दान में खर्च होता है तो फिर और कामों में पेट काटकर हिंदू प्रजा दान कहाँ से दे ? इसी अनुचित दान की बदौलत बड़े बड़े मठधारी धर्माचार्य्य खासे राजे बने लाखों आय की जमींदारी भोगते और हलुवा-पूरी उड़ाते हुए ऐश करते हैं और देश की प्रजा के ज्ञाननेत्र खोलने के लिये रुपया नहीं जुड़ता। अस्तु, हमें अब भी चेतना चाहिए और अपने इस अनुचित दान का स्रोत फेरना चाहिए। नहीं तो "फिर पछताए होत क्या जब चिड़ियाँ चुग गईं खेत" और धर्म्माचार्य्य मठ-धारियों को भी गुरु गोविंदसिंहजी की तरह दान का द्रव्य अपना न समझकर उसे भारत की प्रजा के कल्याणार्थ विद्या-प्रचार में व्यय करना चाहिए। उनका यह राजसी ठाट केवल कतिपय विरक्त साधुओं को ललचाकर निर्वृत्ति-मार्ग से भ्रष्ट कर महंत बनने की प्रबल इच्छा में डालता है और कुछ नहीं कर रहा है। इस समय भारत के सब मठ-धारी या महंत और धर्म्माचार्य्यों की संपत्ति का लेखा लगाया जाय तो कई अरब रुपया होगा जिसमें मजे में कई विश्वविद्यालय चल सकते हैं। पर उन्हें इसकी क्या परवाह है ? मरना सभी को है पर जीता वही है जिसका नाम अमर है। गुरु साहब की तरह यदि इन लोगों की मति फिर जाय तो देश की आधी संतान को केवल ये ही लोग शिक्षित कर सकते हैं और इनका नाम भी अमर हो सकता है। शायद परमात्मा उनकी बुद्धि में इस प्रकार की प्रेरणा करे। बड़े सौभाग्य से परमात्मा ने भारतवासियों को सब सामान ऐसे दिए हैं कि यदि वे मन में करें तो जापान से आधे समय में सारी भारत-संतान शिक्षित हो जावे और तब संसार की सारी वर्तमान जातियों के आगे सिर ऊँचा कर खड़े होने

का सौभाग्य उसे प्राप्त हो।

६—छठी शिक्षा गुरु साहब की नाना प्रकार के कल्पित मिथ्या विश्वासों को छोड़कर एकमात्र परब्रह्म की उपासना करने की है। इन्हीं कल्पित मिथ्या-विश्वासों की बदौलत देश का एक बड़ा भाग मुफ्त का दान लेकर आलस्य और मूर्खता में दिन बिता रहा है। क्या कभी किसी मंदिर के पुजारी या पंडे कहीं भी विद्वान् या परोपकारी सुने गए; पर नाना प्रकार के गुप्त पाप और अत्याचारों के करनेवाले तो अवश्य पाए जाते हैं। इन्हीं धर्म्मध्वजी महात्माओं की बदौलत देश में बड़े बड़े गुप्त पाप हो जाते हैं और होते रहते हैं और सब पर तुर्रा यह कि ये लोग स्वर्ग का ठेका लिए बैठे हैं। श्रीजगन्नाथ, नाथद्वारा, द्वारकापुरी, रामेश्वर सभी जगह पर अब समय आया है कि हम आँखें खोलें, उचित अनुचित की पहचान करें, मिथ्या विश्वासों को छोड़कर अपने अधिकार को समझें और देश में धर्म्म के नाम पर जो करोड़ों रुपया अनाचार में खर्च हो रहा है उसे उचित मार्ग में लगावें। बाकी नाना प्रकार के देवी देवताओं में यदि लक्ष्य एक परमात्मा ही का रखकर उपासना की जावे और निष्काम भाव से पूजा उपासना हो तो वह एक परब्रह्म की पूजा कहलावेगी।

७—सातवीं शिक्षा गुरु गोविंदसिंहजी की यह थी कि काम को वश में रखकर लोग पर-स्त्री पर कुदृष्टि न डालें, लोभ को जीतकर पराए द्रव्य की अनुचित इच्छा न करें, निर्बल जनों पर अनुचित क्रोध न करें, मोह से बचें, वृथा अहंकार न करें और दूसरे का भला देखकर न जलें। ये शिक्षाएँ श्रुति की शिक्षाएँ कही जा सकती हैं और सब देश, सब काल में

मनुष्यों की समान रूप से कल्याणकारिणी हैं। जहाँ देखिए, जिससे पूछिए सभी इन छः शत्रुओं से बचने का उपदेश देते हैं; पर आश्चर्य तो यह है कि सबसे अधिक इन्हीं शत्रुओं के लोग वशीभूत हैं। कोई वर्ण, कोई आश्रम, धनी या निर्धन, विद्वान् या मूर्ख इन प्रबल शत्रुओं के कराल कवल से बचा नहीं। बड़े बड़े संत साधु, महात्मा, देवता, योगी मुनि सभी को इसने पछाड़ दिया है। शायद इतना भारी प्रबल शत्रु जान सभी लोग दूर ही से, 'बचो बचो' कहकर पुकारते रहते हैं। पर देखना चाहिए कि क्या कारण है कि प्राणि-मात्र इन वृत्तियों के ऐसे दास हैं और लाख प्रयत्न करने पर भी इससे बच नहीं सकते। बात असल में यह है कि जिन्होंने इन वृत्तियों को वश में करने की चेष्टा की, उन्होंने देखा कि यह एक सारे जीवन का प्रबल संग्राम है। कामयाबी बहुत कम, केवल गिर-पड़कर हाथ पैर का टूटना और रात दिन की अशांति, यही फल मिलता है। यही देखकर शायद महात्मा तुलसीदासजी ने कहा है कि "तुलसी भले ते मूढ़, जिन्हें न व्यापै जगत गति"। बुद्धिमानों ही की मौत है। रात दिन सोचते सोचते हैरान हैं। यह तो हुई एक तरफ की बात। अब यह भी सोचना जरूरी है कि क्या कारण है कि ये छहों वृत्तियाँ ऐसी प्रबल हैं और ब्रह्मांड को अपनी उँगली पर नचा रही हैं। विद्वानों ने इन छहों वृत्तियों को एक माया या प्रकृति के छः भिन्न भिन्न रूप कहे हैं। माया, या प्रकृति या स्पष्ट शब्दों में इन्हें स्वभाव कहिए। ये छहों वृत्तियाँ प्राणि-मात्र का स्वभाव हैं। इसी को लक्ष्य में रखकर गीताकार कहते हैं कि "प्रकृतिं यांति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति" अर्थात् प्रकृति या स्वभाव के अनुसार जीव चलेंगे ही, रुकावट से क्या होगा।

इसके प्रधान साक्षी हमारे देश के चतुर्थ आश्रमी संन्यासी-गण हैं और द्वितीय आश्रम में विधवागण है। किसी उद्वेग के वश, क्षणिक श्मशान-वैराग्य के कारण या घरवालों से लड़-कर या मेहनत से जान बचाने या सांसारिक युद्ध में असमर्थ होने अथवा मान और यश की इच्छा अथवा दंभ से, लोग साधु संन्यासी या वैरागी जटाधारी हुए; पर महात्मा सूरदास-वाली वात जो उन्होंने इसी स्वभाव को लक्ष्य में रखकर कही है "कहा भयो पय पान कराए विप नहीं तजै भुजंग। कागहिं कहा कपूर खवाए मर्कट भूषण अंग। खर को कहा अरगजा लेपन श्वान नहाए गंग। पाहन पतित वाण नहीं भेदत रीतो करत निषंग। सूरदास खल कारी कँवरिया चढै न दूजो रंग", रत्ती रत्ती सही है। यह स्वभाव छूटने का नहीं है। फल यह होता है कि घर छोड़कर साधु महाराज महंत बन बैठते, कई खेती रख लेते अथवा तृष्णातुर होकर यत्र तत्र घूमा करते हैं। "तपसी धनवान दरिद्र गृही कलि कौतुक तात न जाय कही। बहु धाम सँवारहि साधु यती, विषया हर लीन्ह नई विरती ॥"

यही हाल जगह जगह देखकर तुलसीदासजी ने ऐसा कहा था। कहीं कहीं ये ही महंत लोग फौजदारी लट्ठबाजी, वेश्यागमन, मद्यपान में जी खोलकर निरत हैं और कइयों का अपराध अदालतों में भी प्रमाणित हो चुका है। यह स्वभाव को रोकने की व्यर्थ चेष्टा का परिणाम है। उधर द्वितीय आश्रम में विधवाओं को बरजोरी ब्रह्मचर्य्य कराने का नतीजा भी आँखों के सामने है। इस विषय में अधिक लिखकर लज्जा का पर्दा उघाड़ना उचित नहीं है। बुद्धिमान् समझ ही गए होंगे। तात्पर्य्य यहाँ यही दिखाने से है कि ये छहों वृत्तियाँ प्रसूत और प्राणि-मात्र की नित्य सहचर हैं। उन्हें

बरजोरी रोकने का फल बड़ा भयंकर है। तो फिर क्या सब बिद्वान् या आप्त महात्मा लोग मूर्ख थे जो इन छहों से बचने के लिये बार बार शुरू से आज तक कहते चले आते हैं। बात यह है कि वृत्तियाँ प्राणी के नित्य सहचर और सृष्टि का कारण हैं; पर इनको सदा नजरों में रखना चाहिए जैसे, तेज चंचल चलनेवाला घोड़ा गाड़ी में जुता हुआ बहुत शीघ्र ही गंतव्य स्थान को पहुँचा देता है; पर यदि घोड़ा अच्छी तरह से शिक्षित न हुआ अथवा कोचवान ने रास ढीली कर दी या वह हाँकना न जानता हो तो बस आफत ही समझिए। गाड़ी कहीं खाई खंदक में जा गिरेगी और चढ़नेवाले, हाँकने-वाले सबका नाश कर देगी। यही हाल इन वृत्तियों का भी समझना चाहिए। संसार-यात्रा निर्वाह करने के लिये इन छहों वृत्तियों से काम पड़ता ही है, जैसे बिना काम को चरितार्थ किए वंश नहीं चल सकता, शूरवीर सुयोग्य या धर्मात्मा संतान की उत्पत्ति नहीं हो सकती। बिना क्रोध किए दुष्टों को दंड नहीं दिया जा सकता अथवा अत्याचारी शत्रु का विनाश भी नहीं हो सकता। लोभ बिना व्यापार द्वारा देश की धन वृद्धि और नाना प्रकार के नवीन विज्ञान यंत्र, कला-कौशल का आविष्कार क्योंकर होता? यदि मोह न होता तो कोई माता भी भोग-विलास का सुख छोड़कर संतान का पालन न करती। अभिमान न हो तो आत्मसंमान और देश की प्रतिष्ठा तथा धर्म्म और आचार की रक्षा क्योंकर हो? ईर्ष्या न हो तो दूसरे को बढ़ते देखकर स्वयं उन्नत होने की कभी लालसा भी न हो। ये सब बातें तभी होती हैं जब कोचवान की तरह इन वृत्तियों की लगाम खींचे हुए मनरूपी घोड़े को संसार-क्षेत्र में घुमाते हुए बेखटके जीव

अपनी मंजिल को पहुँच जाता है; क्योंकि बिना इनके संसार क्षेत्र चलेगा ही क्योंकर ? अस्तु इनको अभ्यास, सत्संग और सुशिक्षा द्वारा नियम में रखकर धर्म्म, अर्थ, काम, मोक्ष की सिद्धि कर लेना ही चतुर पुरुषों का काम है। नियमों से बाहर चले नहीं कि सब गड़बड़ हो जाता है और चंचल घोड़ों की तरह ये वृत्तियाँ हमको पापरूपी गहरी खंदक में गिराकर हमारे सर्वनाश का कारण बन जाती हैं। इसलिये काम, क्रोध इत्यादि से बचने का तात्पर्य्य यही है जो ऊपर बताया गया। कुछ इनको एक बार ही नाश कर लेने से तात्पर्य्य नहीं है, जैसा कि गीता में कहा है कि "कछुवे की तरह इंद्रियों को सकुचाए रखे, छिपाए रखे, समय पर उनसे काम ले, यदि कछुवा व्यर्थ ही बार बार सिर बाहर निकाले तो सहज ही शत्रु का शिकार हो जाय।" अस्तु इन वृत्तियों को नियमपूर्वक चलाने की शिक्षा से हमारे यावत् धर्म्मशास्त्र और पुराने इतिहास भरे पड़े हैं। इनका उपयुक्त अध्ययन होना उचित है। गुरु साहब का यह उपदेश देना उचित ही था और वर्त्तमान काल में हमें इस शिक्षा पर चलने की बहुत कुछ आवश्यकता है।

८—आठवीं शिक्षा गुरु साहब की यह थी कि सबको परस्पर भाई भाई समझना, किसी को कोई उपदेश या शिक्षा देकर अपने को उससे बड़ा समझ गुरु नहीं बन बैठना। यदि हमें कोई बात अच्छी मालूम है, जिससे दूसरे प्राणी का कुछ भला हो सकता है तो पूछने पर उसे बतला देना हमारा धर्म्म है। यह तो लोकसेवा का व्रत है। इसमें हम अपने को उससे बड़ा समझकर, गुरु बनकर उसके जान-माल के सर्वाधिकारी क्योंकर हो गए ? अस्तु ऐसे अभिमान को त्यागकर उसे भाई के

तुल्य मानना ही उचित है। इसी शिक्षा के विपरीत नाना प्रकार के पंथ चलाकर, महंत लोग गुरु की पदवी धारण कर शिष्यों का वस्त्रमोचन करते और उस रुपए से आप ऐश इशरत कर मौज उड़ाते हैं। हाँ, यदि गुरु गोविंदसिंह की तरह वे द्रव्य को देशोद्धार और धर्म्म की रक्षा में व्यय करें तो उत्तम है। सो गुरु साहब जानते थे कि गुरुवाई का सिलसिला अधिक चलने से भविष्य में इस अधिकार का दुरुपयोग हो सकता है; इसलिये वे आगे से किसी को "गुरु न मानना" ऐसा उपदेश कर गए हैं।

९—नवीं शिक्षा गुरु साहब की यह थी कि कुड़ीमार (कन्याघातक), नड़ीमार (हुक्का, गाँजा, चरस पीनेवाले), चिड़ीमार (बहेलिया) और सिरमुंडा (संन्यासी) इनका संग न करना और इनके व्यसनों से बचना। भारतवर्ष में पहले यह चाल थी, विशेषकर पीछे के राजपूतों में, कि अपनी अप्रतिष्ठा के भय से वे कन्या को मार डालते थे। उदयपुर की स्वर्गीया कृष्णकुमारी का चरित्र इसका साक्षी है। अस्तु कन्याघातकों के संग से कहीं वीरवर सिक्ख जाति के दिमाग में भी यह मिथ्या अहंकार का भूत सवार न हो जाय और वे भी यह महापाप न करने लग जायँ इसीलिये गुरु गोविंदसिंहजी ने इनकी सोहबत से अपने शिष्यों को सावधान किया। नड़ीमार अर्थात् दम मारने, चंडू गाँजा चरस और तंबाकू पीने से शरीर की क्या क्या हानि होती है, यह अन्यत्र लिखा जा चुका है। अस्तु इनसे बचने के लिये भी शिष्यों को सावधान करना आवश्यक था और हमें भी इससे बहुत बचना चाहिए। लाखों रुपए के विषैले सिगार भारत में आकर यहाँ के कोमल बच्चों का कलेजा भस्म कर रहे हैं। इससे बचना हमारा धर्म्म होना चाहिए और इसे

साधारण दोष न समझकर इसके समूल नाशार्थ हमें कमर कसकर लग जाना चाहिए। चिड़ीमार (बहेलिया) का संग न करने के लिये गुरु गोविंदसिंहजी ने इसलिये बरजा है कि नाहक निर्दोषी पक्षियों के शिकार करने की कहीं सिक्खों को बान न पड़ जाय और वे अपनी वीरता और अपने तेज को गँवाकर सिंह के शिकार और शत्रु के शिकार को छोड़कर चिड़ियों के मारनेवाले न रह जायँ तथा दुर्बल को सताने की कहीं उनकी आदत न हो जाय, जैसा कि कभी कभी ऐसे कर्म्म का अभ्यास करनेवालों की आदत हो जाती है। इसलिये उन्होंने इससे अपने शिष्यों को विशेष सावधान किया। हमारे राजे-महाराजे या जमींदार लोग जिनके हाथ में बंदूक है, उन्हें भी इसी दृष्टांत का अनुकरण करके वृथा निरपराध पक्षियों का शिकार न करके दुर्बलों को सताने की आदत न सीखनी चाहिए। ये पक्षीगण परमात्मा की सृष्टि की शोभा हैं। कई तो रोगों के बीज कीड़े मकोड़ों को खाकर हमारी रक्षा करते हैं, कई खेतों के पतंगों को खाकर खेती को नष्ट होने से बचाते हैं। कई कूड़े कर्कट और गलीज के कीड़ों को साफकर प्रकृति के सफाई विभाग का काम करते हैं। कई सवेरे मीठे स्वर से गान सुनाकर हमारे कर्ण कुहरों को पवित्र करते हैं। अस्तु इन निरपराध प्राणियों पर गोली चलाना पाषाणहृदयों का काम है। जो जरा भी सहृदय है, वह कदापि ऐसा नहीं करेगा।

सिरमुंडा (संन्यासियों) की सोहबत भी सर्वथा लाभकारी नहीं है। इनमें बहुधा वे ही लोग हैं जिनका उल्लेख अन्यत्र किया जा चुका है। सिवा दो चार माननीय महात्माओं के बाकी सभी वृत्तियों के दास हैं और देश की कमाई का

अन्न ध्वंस करनेवाले हैं। इनकी सोहबत से सिवा आलस्य और प्रमाद के गृहस्थ और कुछ नहीं सीख सकेगा। इनके फेर में पड़कर बेचारे कितने बालकों ने सिर मुड़ा लिए और अब उनमें जो समझदार हैं, वे हाथ मल मलकर पछताते हैं। झूठे वैराग्य का उपदेश देकर देश को चौपट करनेवाले और अपना मतलब गाँठनेवाले ये ही सज्जन हैं। अस्तु इनसे बचना और विशेष सावधान रहना सबको सर्वकाल में उचित है। गुरु गोविंदसिंहजी ने भी अपने शिष्यों को इनकी सोहबत से बचने के लिये सावधान किया है।

१०—दसवीं शिक्षा गुरु साहब की यह थी कि उनके शिष्य शरीर के केश न मुड़ाएँ, जाँघिया सदा पहनें, सिवा स्नान के समय में और किसी समय सिर नंगा न रखें, केश सँवारने के लिये कंघा सदा पास रखें, हाथ में लोहे का एक कड़ा और कर्द अथवा तलवार सदा पास रखें। इन्हीं को 'पंज कक्के' भी कहते हैं यथा—कक्का कच्छ, ते कक्का कर्द, ते कक्का कंघा, ते कक्का कड़ा, होर कक्का केश। इन्हीं पंज कक्के अर्थात् पाँच ककारों को सदा पास रखें। केश न मुड़वाने से कई उपकार हैं। केश रक्त का विकार अर्थात् कारबन है। जितना मुड़वाते जाइए, निकलता ही आता है। इसका यदि हिसाब लगाइए तो न जाने जन्म भर में आध इंच, पाव इंच करके कई गज लंबी दाढ़ी मुड़वा चुके; पर यदि आरंभ में ही दाढ़ी न मुड़ाई जाय तो एक दो फुट से अधिक लंबी नहीं रहती और अनावश्यक अंश आपही झड़कर गिर भी जाता है, सो जितना केश मुड़वाते जाना है उतना ही अधिक रक्त में विकार अर्थात् कारबन उत्पन्न करवाते जाना है। यदि केश न मुड़वाए तो रक्त अधिक कारबन पैदा नहीं करता।

आपने देखा होगा कि कुष्ठ इत्यादि रक्तदूषित रोगवालों के केश झड़ जाते हैं, अर्थात् कारबन बिलकुल बाहर न आकर रक्त हो खराब करता रहता है। इससे यह बात साबित है कि केश अवश्य रक्त का विकार है और उसे अधिक त्यागने से विकार अधिकाधिक उत्पन्न होकर मनुष्य को निर्बल करता है। प्राचीन आर्य शास्त्रों में भी ब्रह्मचारियों के लिये पंचकेशी के न त्यागने का विधान है, सो इसका वैज्ञानिक लाभ प्रत्यक्ष है। और भी एक प्रमाण है। स्त्रियाँ केश नहीं त्यागतीं। सो पुरुषों की अपेक्षा दीर्घकाल तक जीवित और स्वस्थ रहती हैं। इन्हीं सब बातों को विचारकर गुरु साहब ने अपने शिष्यों में केश रखने की चाल चलाई थी। दाढ़ी रखने से आँख को भी लाभ पहुँचता है ऐसा लोग कहते हैं। इस काल में भी बहुत से बुद्धिमान सज्जन पंचकेशी धारण करते हैं और यथासंभव सब कोई धारण करें तो लाभ ही है।

दूसरे केश मैला होकर जटा न पड़ जाय, इसलिये उसे साफ रखने के लिये एक कंघे का सदा पास रखना भी जरूरी है। तीसरा कच्छ अर्थात् जाँघिया एक ऐसी पोशाक है जिससे आदमी हरदम चुस्त और फुर्तीला रहता है और उछल-कूद दौड़-धूप सबमें आगे रहता है, सो शूर और योद्धा बननेवाली जाति के लिये यह पोशाक आवश्यक है। सिर नंगा न रखने की शिक्षा भी बहुत ठीक है। शरीर का मुख्य भाग सिर ही है। शत्रु से बचाने के लिये सर्वदा साफा बाँधे रहना कि कोई अस्त्र का वार न हो सके, यह भी बुद्धिमानी है। कर्द या तलवार सदा पास रखना अथवा सर्वदा सशस्त्र रहने की शिक्षा भी बहुत उपयोगी है। यद्यपि बृटिश इंडिया में बिना लाइसेंस के कोई अस्त्र नहीं रख सकता फिर भी जहाँ तक

हो सके लाइसेंस ही लेकर प्रजा मात्र को नवीनतम अस्त्र सदा पास रखना और उसका यथोपयुक्त प्रयोग भी सीखना चाहिए। इसका उपकार बुद्धिमान् लोगों से छिपा नहीं है। लोहे का कड़ा हाथ में पहिनने से भी शत्रुओं से लड़ाई भिड़ाई के समय बहुत कुछ रक्षा होती है और इससे वैज्ञानिक लाभ भी हैं। इन सब बातों से साबित होता है कि गुरु गोविंदसिंहजी को हिंदू प्रजा के सुधारने की कैसी मन से लौ लगी थी और साधारण साधारण बातों पर भी बहुत कुछ सोच-विचारकर उन्होंने अपने शिष्यों की कार्य्य-प्रणाली स्थिर की थी।

११—ग्यारहवीं शिक्षा गुरु साहब की यह थी कि तुम सब लोग भाई भाई हो और एक वीर जाति के सिंह के तुल्य हो। इसलिये अप्रतिष्ठापूर्वक नाम न लेकर भाई अमुक सिंह ऐसा परस्पर संबोधन करके बुलाया करो। परस्पर प्रीति बढ़ाने और आत्म-समान के भाव को जाग्रत करने के लिये यह भी एक अच्छी शिक्षा है।

१२—बारहवीं शिक्षा गुरु साहब की यह थी कि मिथ्या-भाषण नहीं करना। इसकी व्याख्या करना अनावश्यक है। सब लोग जानते हैं। पर शोक है कि बर्तते नहीं। मिथ्याभाषी समझते हैं कि झूठ बोलकर कार्य्य कर लेंगे; पर तुलसीदास ने सच कहा है कि "उघरेहु अंत न होहि निबाहू, कालनेमि जिमि रावन राहू।" इन तीनों ने मिथ्या बोलकर क्षणिक कार्य्य-सिद्धि की; पर फिर पीछे से वे मारे गए। मिथ्याभाषण मनुष्य को कायर, तेजहीन और पुरुषार्थहीन बना देता है। इसके ऐसा दूसरा नीच पाप नहीं। इससे बचना सबको उचित है।

१३—तेरहवीं शिक्षा गुरु साहब की जूआ पासा खेलने के

विषय में थी। इससे दूर रहने के लिये उन्होंने अपने शिष्यों को सावधान किया है। बिना परिश्रम जीवनोपाय अर्थात् द्रव्य प्राप्त हो जाय इसी लालच से जूआ खेलने के व्यसन की उत्पत्ति हुई है। बिना हाथ-पैर हिलाए दूसरे की जमा हाथ आ जाय यही इस प्रवृत्ति का उद्देश्य है। "हींग लगे न फिटकरी, रंग चोखा आवे।" सर्वदेश और सर्वकाल में इसका थोड़ा बहुत प्रचार रहा है और कई बड़े बड़े लोगों को इसके कारण बड़ी बड़ी दुर्दशा भी भोगनी पड़ी है। आलसी और निरुद्यमी लोगों का यही रोजगार है। कब लाटरी की चिट्ठी उनके नाम उठती है और दिन दोपहर वे बड़े आदमी होते हैं, बैठे बैठे ये लोग यही हवाई किले बाँधा करते हैं, क्योंकि शायद संयोग से कभी किसी को कुछ मिल गया तो ये लोग सोचते हैं कि "हमें क्यों नहीं मिलेगा ?" नीति में कहा है कि "जो निश्चित लाभ को छोड़कर अनिश्चित की ओर दौड़ता है, उसका अनिश्चित तो नष्ट हुआ ही है, वह निश्चित को भी खो बैठता है।" अस्तु यही हाल इन लोगों का है। वे केवल आलसी और निरुद्यमी रहकर काल व्यतीत करते हैं और यदि नियम-पूर्वक उद्यम करते तो मजे में जीविका निर्वाह करने के अतिरिक्त संयोग से धनी भी हो सकते थे; पर केवल मानसिक स्वर्ग की रचना करते करते लोग कुछ भी नहीं रह जाते। आज दिन भी कलकत्ता बंबई ऐसे बड़े बड़े व्यापार के स्थानों में युरोपियन लोग तो आफिस खोल-खोलकर व्यापार द्वारा करोड़पति हो जाते हैं और हमारे देशी भाइयों का पुरुषार्थ केवल रुई के सट्टे और सोना चाँदी की तेजी मंदी लगाने में रहता है। रातों रात वे बड़े आदमी हुआ चाहते हैं। सो फल भी प्रत्यक्ष है। राली ब्रादर्स, ग्रेहम कंपनी तो मालामाल हो

गई और हमारे भाई सट्टे ही से सटे हुए हैं या उन्होंने बहुत पुरुषार्थ किया तो इन्हीं साहबों की दलाली करके अपने को धन्य माना। अस्तु, देश के व्यापार और उद्यम में जूआ तेल डालनेवाला है सो दूरदर्शी गुरु गोविंदसिंहजी ने इससे बचने के लिये भी यथास्थान उपदेश दिया है। उसपर ठीक ठीक चलना सर्वथा उचित है।

१४—चौदहवीं शिक्षा गुरु साहब की, स्त्रियों का चिह्न पुरुष धारण न करें इस विषय में है। स्त्रियों की नकल करने से पुरुष भी स्त्रैण होकर कायर हो जाते हैं। आजकल के अनेक नवयुवकों के पीछे भी यह रोग लग गया है। सिर पर केशों की जुलफी जिसकी बनावट और सजधज वेश्याओं को भी मात करती है, लंबी चुनी हुई कोंचेदार धोती, और पतली से पतली नोकवाला कागजी चमड़े का जूता पैरों में पड़ा हुआ, हाथ में पतली सी लपलपाती हुई छड़ी, चलते हुए कमर में तीन तीन बल पड़ जायँ—यह वेष इन बाबुओं का है! न जाने ये लोग अपने को क्या समझते हैं, पुरुष या स्त्री? सो ऐसे बेढंगे वेष से बचने के लिये गुरुजी ने उपदेश दिया सो अच्छा ही किया। हमारे नवयुवकों को इसपर ध्यान देना चाहिए और यह स्त्रैण वेष त्यागकर लोकनिंदा से बचना चाहिए।

१५—पंद्रहवाँ उपदेश गुरु साहब का यह था कि "हमारे सब शिष्य चाहे किसी जाति में उत्पन्न हुए हों अपने को क्षत्रिय समझें। घर में चींटी खटमल की तरह न मरकर युद्धक्षेत्र में मरना परम मंगल मानें।" यह शिक्षा अति उत्तम है और इसमें बड़ी गंभीरता है। युद्धक्षेत्र में मरने से तात्पर्य्य केवल तलवार या बंदूक लेकर परस्पर लड़ मरने ही

से नहीं है; वरन् अपने कर्तव्यरूपी युद्ध-क्षेत्र में साहस और बुद्धिरूपी ढाल तलवार लेकर, विपद्-आपद और विघ्न-विपत्ति रूपी शत्रुओं को मारते हुए, मैदान मार लेने का नाम सच्चा युद्ध है। किसी अँगरेजी के कवि ने कहा है—

"In this world's broad field of battle,

In the bivouac of life,

Be not like a dumb driven cattle,

Be a hero in the strife."

इस संसार रूपी लंबे, चौड़े युद्ध-क्षेत्र में और जीवन की नाना विघ्न-विपत्ति रूपी एकाएकी रात्रि के धावे में, गूँगे उजबक पशु मत बने रहो, कि डंडा मारकर जिसने जिस ओर हाँक दिया, चलने लगे। अपने को बहादुर, शूरवीर बनाकर दिखलाओ।

प्रायः देखने में आता है कि संसार रूपी युद्ध से घबड़ाकर कितने ही लोग नौका की पतवार छोड़ देते हैं। यह पुरुषों का काम नहीं। मैदान-जंग में मरना-मारना मर्दानगी है। कोई देशहित का काम उठाइए और उसमें जी-जान से लग जाइए। सच्चे क्षत्रिय की तरह मरने से न हटिए, कर्तव्य-साधन में चाहे जान जाए चाहे रहे। जैसा कि उसी कवि ने कहा है—

"Let us then be up and doing

With a heart for any fate

Still achieving, still pursuing,

Learn to labour and to wait."

चाहे कुछ हो, भले बुरे परिणाम के लिये हिम्मत बाँधकर, कमर कसे हुए अपने कर्तव्य में डटे रहो। फलाफल भगवान् के हाथ है।

गुरु साहब ने और जो कई एक शिक्षाएँ दी हैं वे गौण हैं। मुख्य मुख्य का वर्णन ऊपर कर दिया गया है। इससे साबित होता है कि गुरु गोविंदसिंहजी केवल खालसा पंथ के प्रवर्तक और मुसलमानों के विरोधी ही नहीं थे; वरन् संसार मात्र के उपकार और भलाई की शिक्षा का प्रचार करनेवाले थे। पर हाँ, जिस देश और काल में उनकी स्थिति थी उसका जिक्र अपनी शिक्षा में उन्हें जगह जगह करना पड़ा है। इससे यह न समझना चाहिए कि उन्हें किसी विशेष देश या पंथ का पक्षपात था। जैसे हिंदू वैसे ही मुसलमानों पर भी उनकी समान प्रीति थी। उदाहरणार्थ सैयद बुद्धूशाह उनके परम मित्र थे और कई मुसलमान उनके शिष्य और भक्त थे। इन्हीं भक्तों में से एक ने अंत समय उन्हें धोखा भी दिया और पेट में कटार भोंक दी; पर उन्होंने अपना उद्देश्य नहीं बदला। उनका उद्देश्य तो 'खालिस धर्म्म प्रचार' से था जो कि श्रुति की शिक्षा है और जिसका कुछ खुलासा ऊपर दिया गया है। दुष्टों का दमन और शिष्टों का पालन इस धर्म्म का एक मुख्य अंग है; इसलिये उन्हें तात्कालिक राजनैतिक बखेड़े में भी हाथ डालना पड़ा। पर मुख्य उद्देश्य यही था कि "लोग नाना प्रकार के मिथ्या विश्वासों को छोड़कर, एक मात्र परब्रह्म की उपासना करें।" इसमें जो जो कठिनाइयाँ उपस्थित होंगी और जिन जिन उपायों का साधन करना होगा, उनकी शिक्षा उन्होंने खुलासे तौर पर की है। अब श्रीकृष्ण भगवान् के इस उपदेश "कर्म्मण्येवाधिकारस्ते, मा फलेषु कदाचन" को ध्यान में रखकर हमें मैदान में आगे बढ़ना चाहिए।